शोधादर्श

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श –४७

वीर निर्वाण संवत् २५२८ **जुलाई २००२ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण–कीर्तन : पंडित टोडरमल	श्री रमाकान्त जैन	१
२.	पारनगर का जैन पुरातत्त्व	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	७
३.	सच्चे कलाकार का दर्शन	रमाकान्त जैन	८
४.	सम्पादकीय : पुरा सम्पदा का संरक्षण	श्री अजित प्रसाद जैन	९
५.	कतिपय विलक्षण जैन मूर्तियां	डॉ. शशि कान्त	११
६.	कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान	डॉ. कपूर चन्द्र जैन	१३
७.	निर्वैर एवं क्षमा के प्रतीक : भगवान पार्श्वनाथ	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	१६
८.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर का अहिंसा सन्देश	डॉ. श्रीमती सूरजमुखी जैन	२०
९.	भगवती सूत्र का मांसाहार प्रकरण – एक मीमांसा	श्री अजित प्रसाद जैन	२३
१०.	तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम	डॉ. परमानन्द जड़िया	३२
११.	अर्जुन माली (नाटिका)	श्रीमती सुधा जिन्दल	३३
१२.	समाधान मांगते प्रश्न :		३९
१३.	श्रावकाचार संगोष्ठी	श्री अजित प्रसाद जैन	४१
१४.	स्वास्थ्य के बारे में कुछ बातें	साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	४६
१५.	सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमाकान्त जैन	४७

१६. कुम्मापुत्तचारिअम्	श्री रमाकान्त जैन	४८
१७. साहित्य सत्कार :		४६
बूंद–बूंद सागर; उद्बोधन; पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण सामायिक विधि; सूक्ति संग्रह; पंच परमेष्ठी; कल्पान्तर्वाच्य. लक्ष्मणपुर की आत्मकथा; भक्ति गीत संग्रह सुमनहार; जैन पर्व; क्या क्षेत्रपाल पद्मावती आदि शासन देवता पूजनीय हैं; सम्यग्ज्ञान परीक्षा; समाधि संजीविनी; जैन जाति नहीं धर्म है; जीवन क्या है; कुण्डलपुर के राजकुमार जननायक तीर्थंकर महावीर; गुरु–परम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम– एक इतिहास; शौरसेनी प्राकृत भाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	श्री अजित प्रसाद जैन	
Facets of Jainology	डॉ. शशि कान्त	
प्रमाण निर्णय	श्री रमाकान्त जैन	
युग–युग में जैन धर्म	डॉ. (श्रीमती) राका जैन	
१८. समाचार विमर्श :	श्री अजित प्रसाद जैन	५६
वर्तमान बुद्धिजीवी फोरम गुजरात का नरसंहार अहिंसा वर्ष समापन के उपहार : ललित जैन की हत्या राख और एक सारिका की इस युग में भी ताड़पत्रों पर शास्त्र आलेखन एक और गणधर हुए भाषा समिति मुनि श्री की भट्टारक पद–स्थापना शाकाहार प्रचार– कितना सार्थक		
१६. स्मृति दिवस	श्री अंशु जैन 'अमर'	७१
२०. समाचार विविधा		७२
२१. अभिनन्दन		७४
२२. शोक संवेदन		७८
२३. आभार		७८
२४. शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में		७६

गुरुगुण कीर्तन -

पंडित टोडरमल

देश ढुंढारह आदि दे, सम्बोधे बहु देश।
रचि-रचि ग्रन्थ कठिन किए, टोडरमल्ल महेश।

- पं. सेवारामकृत शान्तिनाथ पुराण वचनिका प्रशस्ति

भाषाटीका ता उपरि, कीनी टोडरमल्ल।
मुनिवत वृत्ति ताकी रहे, वाके मांहि अचल्ल।।

- पं. दौलतराम कासलीवाल कृत पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय भाषा टीका प्रशस्ति

ऊपर जिन टोडरमल्ल की विद्वत्ता के लिये सराहना की गई है उनका उल्लेख 'टोडरमल', 'टोडर', 'मल्लजी' अथवा 'मलजी' के रूप में भी मिलता है। उनकी विद्वत्ता के कारण उनके नाम के पहले 'पंडित' शब्द का प्रयोग होता रहा है। उनके नाम के साथ 'आचार्यकल्प' उपाधि भी लगी मिलती है जबकि वह गृहस्थ थे दिगम्बर मुनि नहीं, और ना ही रीतिकालीन 'काव्यशास्त्रीय आचार्य' थे। यह सम्मान उन्हें पहले हुए दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा जैन साहित्य की अभिवृद्धि में किये गये अभूतपूर्व योगदान के तुल्य योगदान किये जाने के फलस्वरूप दिया गया बताया जाता है और वह 'आचार्यकल्प पंडित टोडरमल' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

उनकी कृति **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** की प्रशस्ति से विदित होता है कि उनकी माता रम्भा देवी ओर पिता जोगीदास थे। उनकी जाति खण्डेलवाल थी और गोत्र गोदीका, जिसे भौंसा और बड़जात्या भी कहते हैं। उनकी जन्मतिथि के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता और विद्वानों में उस सम्बन्ध में मतभेद भी रहा है। डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने अपने शोध प्रबन्ध 'पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व' में सभी अन्तर्साक्ष्यों-बहिर्साक्ष्यों का परीक्षण कर उनका जन्म विक्रम संवत् १७७६-७७ (१७२० ई.) में हुआ माना है। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी कोई स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि वह वर्तमान राजस्थान के ढुंढारह प्रदेश

के थे। उस प्रदेश, जिसे उन्होंने देश लिखा है, के जयपुर नगर में उन्होंने अपना अधिक निवास होना अपनी कृति **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** की प्रशस्ति में स्वयं स्वीकार किया है। उनकी मृत्यु भी जयपुर में ही हुई बताई जाती है। उनकी पत्नी और ससुराल पक्ष वालों का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु पं. देवीदास गोधा की **सिद्धान्त टीका प्रशस्ति** से विदित होता है कि उनके दो पुत्र थे- हरिचंद और गुमानीराम। गुमानीराम उनके समान ही उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावक अध्यात्म-प्रवक्ता थे। उनके पास बड़े-बड़े विद्वान तत्व का रहस्य समझने आते थे।

टोडरमल ने अपने गुरु का उल्लेख नहीं किया है। डॉ. भारिल्ल के अनुसार टोडरमल ने जयपुर की सैली, धार्मिक ज्ञान देने वाली मण्डली, में शिक्षा प्राप्त की थी और उस सैली में रहे बाबा बंशीधर संभवतया उनके शिक्षागुरु रहे और उनसे उन्होंने जैन शास्त्रों, व्याकरण, छन्द, न्याय, गणित, अलंकार, काव्य आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। प्राकृत भाषा में निबद्ध **लब्धिसार** और **क्षपणासार** की संदृष्टियों के आरंभ में टोडरमल के इस कथन कि 'शास्त्र विषै लिख्या नाहीं और बतावने वाला मिल्या नाहीं' से यह विदित होता है कि इन शास्त्रों का ज्ञान उन्होंने स्व अध्यवसाय से प्राप्त किया था। अपने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में उन्होंने स्वयं अपने पूर्व संस्कारों और भली होनहार को शास्त्र विषय में अभ्यास-उद्यम करने का हेतुक बताते हुए व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थों और टीका सहित **समयसार**, **पंचास्तिकाय**, **प्रवचनसार**, **नियमसार**, **गोम्मटसार**, **लब्धिसार**, **त्रिलोकसार**, **तत्वार्थसूत्र** इत्यादि शास्त्रों, और **क्षपणासार**, **पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय**, **अष्टपाहुड़**, **आत्मानुशासन** आदि शास्त्रों, और श्रावक-मुनि-आचार प्ररूपक अनेक शास्त्रों तथा सुष्ठुकथा सहित पुराणशास्त्रों का अभ्यास करने की बात लिखी है। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के पांचवे अधिकार में प्रयुक्त अनेक भारतीय दर्शन ग्रन्थों के उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि उन्हें जैन दर्शन के साथ-साथ समस्त भारतीय दर्शनों का समुचित ज्ञान था। ब्र. रायमल के इस उल्लेख कि ''दक्षिण देस सूं पांच-सात और ग्रंथ ताड़पत्रां विषै कर्णाटी लिपि मैं लिख्या इहां पधारे हैं, ताकूं मलजी बांचै है, वाका यथार्थ व्याख्यान करै है वा कर्णाटी लिपि मैं लिखि लेहैं'' से ज्ञात होता है कि प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान पं. टोडरमल ने कन्नड़ भाषा और लिपि का भी अध्ययन किया था और उसमें लिखे ताड़पत्रीय ग्रन्थों को बांचकर व्याख्यान करने तथा कन्नड़ लिपि में लिखने का कौशल उन्हें प्राप्त था।

वणिक कुल में उत्पन्न टोडरमल की आर्थिक स्थिति साधारण रही बताई जाती है। उनके समकालीन साधर्मी ब्र. रायमल की **जीवन पत्रिका** से विदित होता है कि सेखावटी विषयान्तर्गत सिंघाड़ा नगर (जयपुर के पश्चिम में लगभग १५० किलोमीटर दूर) में दिल्ली के किसी बड़े साधर्मी साहूकार के पास टोडरमल्ल कार्य करते थे और वहीं रायमल की टोडरमल्ल से भेंट हुई थी और वह उनकी ज्ञान महिमा से प्रभावित हुए थे। 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषा टीका' की प्रशस्ति में आये इस उल्लेख ''भृत्य भूप को कुल वणिक, जाको बसवो धाम'' से विदित होता है कि टोडरमल राजकीय सेवा में भी रहे थे। सिंघाड़ा से जयपुर लौटने पर टोडरमल तत्कालीन जयपुर नरेश माधोसिंह के दीवान रतनचंद और बालचंद छाबड़ा, जो उनकी दैनिक शास्त्र सभा के श्रोता थे, के सम्पर्क में आये थे। जयपुर में वि.सं. १८२१ (१७६४ ई.) में हुए 'इन्द्रध्वज विधान महोत्सव' का संचालन इन दोनों दीवानों ने किया था। दीवान रतनचंद पं. टोडरमल से इतने प्रभावित थे कि उनकी मृत्यु के उपरांत उनकी अपूर्ण 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषा टीका' को आग्रह कर पं. दौलतराम कासलीवाल से उन्होंने पूर्ण कराया था। कदाचित् दीवान रतनचंद के प्रभाव से टोडरमल राजा माधोसिंह की सेवा में आये। किन्तु वह अधिक समय तक राजकीय सेवा का उपभोग नहीं कर सके। शीघ्र ही एक साम्प्रदायिक कुचक्र का शिकार हो मृत्युदण्ड के भागी हुए। वि.सं. १८२७ (१७७० ई.) में पूर्ण किये अपने 'बुद्धि विलास' में पं. बखतराम शाह ने इस घटना का वर्णन किया है। बखतराम के अनुसार कुछ मतांध ब्राह्मणों द्वारा लगाये गये शिवपिण्डी को उखाड़ने के आरोप के संदर्भ में राजा द्वारा सभी श्रावकों को कैद कर लिया गया था और दुष्टों के भड़काने पर राजा ने तेरापंथियों के गुरु, महान धर्मात्मा पंडित टोडरमल से कुपित होकर उन्हें मरवाकर गंदगी में गड़वा दिया था। यह भी कहा जाता है कि उन्हें हाथी के पैर के नीचे कुचलवा कर मारा गया था। यह घटना जयपुर नरेश माधोसिंह, जिनकी मृत्यु चैत्र कृष्ण ३ वि.सं. १८२४ (१७६७ ई.) को हुई थी, के राज्यकाल की है। ब्र. रायमल ने अपने 'चर्चा-संग्रह' में लिखा है, ''टोडरमल जी सैतालीस बरस की आयु पूर्ण करि परलोक विषै गमन की।'' इस प्रकार १७२० ई. में जन्मे पंडित टोडरमल की मृत्यु ४७ वर्ष की आयु में सन् १७६७ ई. में होना सूचित होता है।

गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी टोडरमल की वृत्ति मुनिवत सात्विक, निरीह एवं साधुता की प्रतीक थी। आत्मस्वरूप की प्राप्ति और आध्यात्मिक तत्व-प्रचार ही

उनका एकमात्र लक्ष्य था। अपने जीवन का अधिकांश समय वह स्वानुभव प्राप्ति के यत्न, शास्त्राध्ययन, मनन, चिंतन, लेखन, तत्वोपदेश एवं तत्सम्बंधी साहित्य निर्माण में ही लगाते थे और अपने पाठकों व श्रोताओं को भी निरंतर इसी की प्रेरणा दिया करते थे। उनकी १२ कृतियां प्राप्त हुई बताई जाती हैं। इनमें से सात टीका ग्रन्थ हैं और पांच मौलिक रचनायें हैं। इन कृतियों का कालक्रमानुसार संक्षिप्त परिचय निम्नवत है-

रहस्यपूर्ण चिट्ठी- मुलतान निवासी भाई खानचंद, गंगाधर, श्रीपाल और सिद्धारथदास ने कुछ सैद्धान्तिक और अनुभवजन्य प्रश्नों का उत्तर जानने, शंका-समाधान, हेतु टोडरमल को पत्र लिखा था। उस पत्र का उत्तर टोडरमल ने फाल्गुन कृष्ण ५, वि.सं.१८११ (१७५५ ई.) को दिया था, जैसाकि उसके अंत में स्पष्ट उल्लेख है। उस पत्र में सामान्य शिष्टाचार के उपरांत आत्मानुभव करने की प्रेरणा देते हुए आगम और अध्यात्म चर्चा में गर्भित पत्र देते रहने का आग्रह किया गया है और तदुपरान्त पूछे गये प्रश्नों का उत्तर आगम, युक्ति ओर उदाहरणों द्वारा दिया गया है। देश विभाजन के उपरान्त मुलतान से आये कतिपय जैन बंधुओं के साथ इस चिट्ठी की एक प्राचीन प्रति आदर्शनगर, जयपुर के दिगम्बर जैन मंदिर को प्राप्त हुई। सैद्धान्तिक प्रश्नों का तर्कसम्मत समाधान प्रस्तुत करने वाली पत्र शैली में निबद्ध सोलह पृष्ठीय इस छोटी रचना को टोडरमल ने स्वयं कोई नाम नहीं दिया, किन्तु विद्वानों ने इसकी महत्ता को लक्षित कर इसे 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी', 'आध्यात्मिक पत्रिका' और 'आध्यात्मिक पत्र' नाम दिये। यह पत्र, 'जो 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है', 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के साथ तथा स्वतंत्र रूप से हिन्दी और गुजराती में प्रकाशित हो चुका है।

सम्यग्ज्ञानचंद्रिका- गोम्मटसार जीवकाण्ड भाषाटीका, गोम्मटसार कर्मकाण्ड भाषाटीका, अर्थ संदृष्टि अधिकार, लब्धिसार भाषाटीका और **क्षपणासार भाषाटीका** इन पांच महंत्वपूर्ण कृतियों को समाहित किये हुए ३४०६ पृष्ठीय विशाल ग्रन्थ का नाम **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** है। इसमें प्राकृत भाषा में निबद्ध करणानुयोग के गम्भीर ग्रन्थों को सरल, सुबोध, देशभाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। गणित के माध्यम से भी विषय स्पष्ट किया गया है और यथास्थान चार्ट्स (गणितीय तालिकाएं) दी गई हैं तथा 'अर्थसंदृष्टि अधिकार' नामसे अलग अधिकार लिखा गया है। टोडरमल के अगाध पाण्डित्य का द्योतक यह महान टीकाग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। इसका

उनके समय में भी भारतवर्ष में चलने वाली प्रसिद्ध 'सैलियों' (धार्मिक गोष्ठियों) में स्वाध्याय होता था और आज भी विद्वद् समाज में इसका पूर्ण समादर है। यह महाग्रन्थ जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हो चुका है तथा इसमें सन्निहित ग्रन्थों की भाषा टीकाएं पृथक्-पृथक् भी प्रकाशित हो चुकी हैं। वस्तुतः इन भाषा टीकाओं का प्रणयन पृथक्-पृथक् ही हुआ था, किन्तु बाद में इनके परस्पर सहायकपन को देखकर कृतिकार ने इन सबको मिलाकर सम्पूर्ण ग्रन्थ का नाम 'सम्यग्ज्ञान चंद्रिका' धर दिया जैसा कि उसने ग्रन्थ प्रशस्ति में स्पष्ट किया है। यद्यपि ग्रन्थ प्रशस्ति में ग्रन्थ पूर्ण होने की तिथि माघ शुक्ल पंचमी, वि.सं. १८१८ अंकित है, इसका प्रणयन वि.सं. १८१२ में प्रारंभ हो चुका था और आश्विन कृष्ण ५ वि.सं. १८१५ में भूधरदास ने अपने "चर्चा समाधान", जिसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर तेरापंथीयान में उपलब्ध बताई जाती है, में पं. टोडरमल द्वारा **गोम्मटसार** आदि ग्रन्थों की साठ हजार श्लोक प्रमाण टीका बनाये जाने का उल्लेख किया है। इससे यह असन्दिग्ध है कि वि.सं. १८१८ में इस महाग्रन्थ को अंतिम रूप दिये जाने के पूर्व ही इसमें समाहित ग्रन्थों की भाषा टीकाएं प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थीं।

गोम्मटसार पूजा- गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की अपनी उपर्युक्त भाषा टीकाएं बनाने के उपरान्त वि.सं. १८१५-१८१८ के मध्य पं. टोडरमल ने उक्त महान सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करने हेतु ५७ छन्दों की इस पूजा की रचना की। इसमें ४५ छन्द संस्कृत में तथा १२ हिन्दी में हैं। पूजा के अष्टक और पूजा के अर्घ संस्कृत में तथा जयमाल हिन्दी में हैं। यह कृति प्रकाशित हो चुकी है और इसके संस्कृत छन्दों का हिन्दी रूपान्तर पं. कमलकुमार शास्त्री व फूलचंद 'पुष्पेन्दु' खुरई द्वारा किया जा चुका है।

त्रिलोकसार भाषा टीका- नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती द्वारा तीनों लोकों का वर्णन करने वाले प्राकृत भाषा में निबद्ध **त्रिलोकसार** ग्रन्थ की भाषा टीका का प्रणयन वि. सं. १८१५ में हो चुका था, जैसा कि उपर्युक्त 'चर्चा समाधान' में इसके विषय में प्राप्त उल्लेख से विदित होता है, किन्तु संशोधनादि के उपरान्त इसे अन्तिम रूप वि.सं. १८२३ में प्राप्त हुआ।

समोसरण रचना वर्णन- श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, मुम्बई में उपलब्ध 'त्रिलोकसार भाषा टीका' की प्रतिलिपि के अन्त में तीर्थंकर भगवान की

धर्मसभा का वर्णन करने वाली २० पृष्ठीय यह गद्य रचना संज्ञान में आई है। इसका रचनाकाल डॉ. भारिल्ल ने उक्त भाषा टीका के उपरान्त वि.सं. १८१८ -१८२४ के मध्य अनुमानित किया है और यह अभी अप्रकाशित बताई जाती है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक- सम्पूर्ण जैन सिद्धान्त को अपने में समेट लेने का सार्थक प्रयास करने वाला ढूंढारी भाषा में गद्य में निबद्ध यह मौलिक ग्रन्थ अपूर्ण होते हुए भी अपूर्वता के लिये प्रसिद्ध है और इसके कई संस्करण निकल चुके हैं तथा खड़ी बोली हिन्दी, गुजराती, मराठी और उर्दू में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इसका रचनाकाल वि.सं. १८१८-१८२४ के मध्य अनुमानित है।

आत्मानुशासन भाषाटीका- आचार्य गुणभद्र (नवीं शती ईस्वी) के संस्कृत भाषा में २६६ छन्दों में निबद्ध शान्तरस प्रधान सुभाषित ग्रन्थ **आत्मानुशासन** की यह भाषा टीका टोडरमल ने मिथ्याभ्रम में फंसे हुए मंदबुद्धि जीवों के उपकार की भावना से की थी। इसका रचनाकाल वि.सं. १८२१ में जयपुर में हुए इन्द्रध्वज विधान के उपरान्त माना जाता है क्योंकि उक्त महोत्सव पत्रिका में इसका उल्लेख नहीं है।

पुरुषार्थसिद्धयुपाय भाषाटीका- आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा श्रावकों के आचार का वर्णन करने वाले संस्कृत में निबद्ध लोकप्रिय ग्रन्थ **पुरुषार्थसिद्धयुपाय** की भाषाटीका प्रारंभ कर टोडरमल उसे अपने जीवन में पूर्ण नहीं कर पाये थे। उनके निधन के उपरान्त दीवान रतनचंद की प्रेरणा से पं. दौलतराम कासलीवाल ने मार्गशीर्ष शुक्ल २ वि.सं. १८२७ को यह टीका पूर्ण की थी। यह टीका तथा इसका खड़ी बोली हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। इस टीका से प्रभावित होकर इसके आधार पर भूधर मिश्र, नाथूराम प्रेमी, उग्रसेन जैन, बाबू सूरजभान वकील, पं. मक्खनलाल शास्त्री प्रभृति परवर्ती विद्वानों ने अपनी टीकाएं रचीं।

अपने ज्ञान, व्याख्यान, रचनाओं और आचरण से अपने समय की विद्वत्मण्डली और परवर्ती विद्वानों का मनमुग्ध करने वाले तथा अपने अल्प जीवन में भारती के भण्डार की अक्षय अभिवृद्धि करने वाले आचार्यकल्प पंडित टोडरमल आज भी श्रद्धास्पद हैं।

- रमाकान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग
लखनऊ- २२६००४

पारनगर का जैन पुरातत्त्व

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

एक प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ ने एक बार कहा था कि भारतवर्ष में किसी भी स्थान को केन्द्र बिन्दु मानकर यदि १२ मील अर्धव्यास का एक वृत्त खींचा जाय तो उसके अन्तर्गत एक व अधिक जैन पुरातत्त्व विशेष अवश्य ही मिलेंगे। इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। वस्तुतः सम्पूर्ण भौगोलिक भारतवर्ष का ही नहीं, वृहत्तर भारत का भी संभवतया स्यात् ही कोई भाग ऐसा रहा हो जहाँ किसी न किसी काल में जैन धर्म और संस्कृति का प्रभाव न पहुँचा हो। जैनों की विपुल पुरातत्त्विक सामग्री का विनाश अजैन विद्वानों की अनभिज्ञता या उपेक्षा के कारण शायद उतना नहीं हुआ जितना कि स्वयं जैनों के प्रमाद और मूर्खता के कारण हुआ है। जो कुछ बचा है, या जितने कुछ की जानकारी भी रह पाई हैं, उसका अधिकांश श्रेय राजकीय पुरातत्त्व विभाग के यूरोपियन पर्यवेक्षकों तथा उनके उपरान्त इस विभाग के भारतीय, प्रायः अजैन, अधिकारियों की कृपा का ही फल है। विपुल जैन सामग्री देश के विभिन्न पुरातत्त्व संग्रहालयों में सुरक्षित है, किन्तु उसका भी बहुभाग ऐसा है जो उक्त संग्रहालयों के गोदामों में ही पड़ा है, उसका कोई प्रदर्शन, अध्ययन या उपयोग नहीं होता। जो सामग्री संग्रहालयों में स्थानान्तरित नहीं हो पाई या नहीं की गई और प्राप्ति स्थान पर ही पड़ी रहने दी गई वह तो शनैः-शनैः लुप्तप्रायः ही हो गई। पिछली शती के सुप्रसिद्ध पुरातत्त्व पर्यवेक्षक जनरल कनिंघम आदि ने अपनी विभिन्न रिपोर्टों में अनेक स्थानों के जिन जैन भग्नावशेषों, कलाकृतियों आदि का वर्णन किया है, यदि फिर से कोई पर्यवेक्षण किया जाय तो उनमें से बहुभाग अब नहीं मिलेगा।

सन् १८८५ ई. में प्रकाशित अपनी सर्वे रिपोर्ट (भाग २०) के पृ. १२४-१२७ में कनिंघम ने पश्चिमी राजस्थान के पुराने अलवर राज्य में, अलवर नगर से २८ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित, पारनगर का कुछ विवरण दिया है। उसके अनुसार किसी समय यह स्थान एक सुदृढ़ परकोटे से सुरक्षित एक सुन्दर एवं विशाल नगर था और बड़गूजर वंशी राजपूत राजाओं की राजधानी थी। अपने नीलकण्ठ महादेव के मंदिर के लिये यह स्थान वर्तमान काल तक प्रसिद्ध रहता आया है। कनिंघम ने दुर्ग के परकोटे के भीतर प्रवेश करने पर एक पुराना तालाब देखा जिसे लचोरोताल कहते थे और ज़िसके किनारों पर अनेक देवालय स्थित थे। इन्हीं में से एक प्राचीन

एवं भग्न मंदिर के भीतर उसे एक अतिविशाल जिनप्रतिमा मिली थी। मूल प्रतिमा १३ फीट ६ इंच ऊँची खड्गासन थी और सिर के ऊपर २ फीट ३ इंच ऊँचा छत्र था जिसे दोनों ओर से दो गजराज सम्हाले हुये थे। मूर्ति की कुल ऊँचाई इस प्रकार १६ फीट थी और उसकी चौड़ाई ६ फीट थी। यह मूर्ति बड़ी मनोज्ञ और प्रायः अखंडित थी। निकटवर्ती नीलकंठ महादेव मंदिर में सन् ६५३ ई. का एक शिलालेख भी मिला था। अतः उपरोक्त जिनमूर्ति तथा संबंधित जिनमंदिर भी प्रायः उसी काल के अनुमान किये गये। यह दुर्ग रूपी नगर एक पहाड़ी के ऊपर बना था। उक्त पहाड़ी की तलहटी में दपकन नामक ग्राम था। उसमें भी अनेक मंदिरों के भग्नावशेषों में अनेक दिगम्बर जिन प्रतिमाओं के खंडित अंश मिले थे।

क्या कभी किसी जैन ने यह जानने की कोशिश की कि इस स्थान के तथा ऐसे ही अन्य अनगिनत स्थानों के ज्ञात जैन पुरातत्त्व का क्या हुआ?

(जैन-संदेश (शोधाङ्क) २३ (२५ अंगस्त, १६६६) के पृष्ठ १०१-१०२ से साभार उद्धृत- संपादक)

सच्चे कलाकार का दर्शन

मनोज्ञता बसी हुई है मंदिरों में हमारे।
पाषाण जीवन्त हो उठे छैनियों के सहारे।।
साधना शिल्पियों की रंग लाई यहाँ पर।
स्वर्ग की सुषमा उतर आई धरा पर।।१।।

तूलिका ने चित्र यहाँ ऐसे हैं संवारे।
भित्तियां मुखरित हो उठीं स्वयं उनके सहारे।।
आराध्य का दिव्य स्वरूप प्रस्फुटित हो उठा है।
मनमुग्ध दर्शक भाव विभोर हो उठा है।।२।।

भक्तिवश शीश अपना वह है नवाये।
प्रभु-पाद-पद्मों में गुनगुनाता जाये।।
धन्य आज मेरा जीवन हो गया है।
सच्चे कलाकार का दर्शन मुझे हो गया है।।३।।

- रमाकान्त जैन

सम्पादकीय

पुरा सम्पदा का संरक्षण

हमारे पूर्वज (व उनके मार्गदर्शक पंडितगण) कदाचित् वास्तुशास्त्र के जानकार नहीं थे। हो सकता है उन्होंने वास्तु विद्या का नाम भी न सुना हो। अब हमारे कतिपय वास्तु विज्ञ आचार्यों/मुनिराजों/आर्यिका माताओं की महान अनुकम्पा से अनेक प्राचीन मंदिर, वेदियां, मूर्तियां जो पुरासम्पदा का महत्व भी प्राप्त कर चुके हैं उनके वास्तु दोष प्रकाश में लाए जा रहे हैं जिनके वास्तुदोष निवारण के बिना संबंधित तीर्थक्षेत्र या स्थानीय समाज की वांछित प्रगति अवरूद्ध है। उनके उपदेश-निर्देश से उन दोषपूर्ण निर्माणों को गिराकर नए निर्माण कराए जा रहे हैं। (हमने शोधादर्श-४५ के पृष्ठ ५८ पर श्री लालचंद जैन, टिकैतनगर की कुछ जिज्ञासाएं प्रकाशित की थी जो उन्होंने किन्ही वास्तु विज्ञ पिच्छीधारी व प्रतिष्ठाचार्य द्वारा स्थानीय मंदिर के बहुमूल्य निर्माण को वास्तु दोष के आधार पर सम्पूर्ण बस्ती के लिए अमंगलकारी घोषित करते हुए गिरा देने की प्रेरणा देने के संदर्भ में की थी।)

हमारे एक महान प्रभावक वास्तुविज्ञ युवा मुनिराज ने तीर्थोद्धार को अपने श्रमण जीवन का मिशन ही बना लिया है, और वह प्राचीन तीर्थों को वास्तु दोषों से मुक्त कर उनके उद्धार व विकास के लिए पूर्णतः संकल्पित है तथा विगत कुछ ही वर्षों में देवगढ़, सांगानेर, चांदखेड़ी तीर्थों के प्राचीन मूल वास्तु दोषयुक्त निर्माणों को गिरवाकर करोड़ों की लागत से नवनिर्माण करवा चुके हैं, करवा रहे हैं। उनके द्वारा देवगढ़ में अनेक प्राचीन मूर्तियों के नवीकरण (भले ही इससे उनका पुरास्वरूप नष्ट हो गया हो) की चर्चा हमने भी शोधादर्श के अंक-१५ (पृष्ठ २२-२६) तथा अंक १६ (पृ. ११८-१२३) में की थी। कुण्डलपुर (म. प्र.) के जीर्णोद्धार की चर्चा भी जैन पत्र पत्रिकाओं में छाई रही है, और अब चांदखेड़ी। दिशाबोध के फरवरी-मार्च २००२ के संयुक्तांक में उसके विद्वान सम्पादक डा. चिरंजीलाल बगड़ा का लेख 'आपरेशन विध्वंश-एपीसोड चांदखेड़ी' जो उन्होंने स्वयं चांदखेड़ी क्षेत्र के पूर्व निर्माणों के विध्वंस का तथा नव निर्माण का निरीक्षण करके लिखा है, पठनीय है। भारी आलोचनाएं भी इन मुनि कुंजर के अदम्य उत्साह एवं लगन को किंचित मात्र भी प्रभावित नहीं कर पाई।

परम पूज्य महाव्रतियों की प्रेरणा, निर्देश से पुरासम्पदा के बड़े पैमाने पर नष्ट किए जाने, नवीकरण किए जाने से चिन्तित हो कर वरिष्ठ पत्रकार श्री मिलापचंद जी डंडिया की अध्यक्षता में जयपुर में जैन संस्कृति रक्षा मंच का गठन हुआ है जो श्रमण संस्कृति व पुरा सम्पदा के संरक्षण के लिए समर्पित है। न्यायमूर्ति श्री एन. एम.

कासलीवाल पूर्व न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय, इस मंच के संरक्षक हैं तथा वे इसकी गतिविधियों में सक्रिय रुचि भी लेते हैं।

चांदखेड़ी क्षेत्र की पुरा सम्पदा को वास्तु दोष के आधार पर ध्वस्त किए जाने का श्री डांडिया जी तथा उनके संस्कृति रक्षा मंच के घोर विरोध से तृस्त होकर मुनि श्री के श्रद्धालु भक्तों की ओर से उन्हें तथा उनके परिवार को जान से मार डालने की लिखित धमकियां भी दी जाने लगी हैं। श्री डंडिया जी ने ऐसे धमकी भरे तीन पोस्टकार्डों की छाया प्रति सर्वत्र प्रकाशित की है। उन्हें इन धमकियों से आशंकित होकर शासन से पुलिस सुरक्षा की मांग करनी पड़ी है और मुख्यमंत्री जी ने इस मामले में उचित कदम भी उठाए हैं।

धमकी के तीनों पत्र अनहस्ताक्षरित हैं। पर उनकी भाषा, शैली तथा लिखावट से वे एक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये मालूम पड़ते हैं। नीचे हम पत्रों के अंश उद्धृत कर रहे हैं -

'मिलाप डंडिया एवं परिवार

तेरे पत्र पढ़कर मेरा हृदय उद्वेलित हो गया है कि तूने तेरी रोटी सेकने के लिए समाज को तोड़ने सरीखा गलत कार्य क्यों किया ? तेरी काली करतूत का फल तो तुझे व तेरे परिवार को इसी जन्म में व जन्म जन्म में मिलना ही है, पर चिन्ता मत कर **तेरा बाप अब पैदा हो गया है** जो तेरा नाम निशान भी मिटा के रहेगा। **तेरे परिवार का एक भी सदस्य नहीं बच पाएगा-- कुत्ते, गुंडे, तुझे मरने के पहले पानी नहीं मिलेगा**--तू व तेरा परिवार बरबाद होकर रहेगा।-- तैने जैन समाज का नाम बदनाम कर दिया है, तुझको जीने का अधिकार नहीं है, तुझको समाधिमरण नहीं मिल सकता।'

पत्रों की भाषा सधुक्कड़ी है तथा किसी ऐसे महापुरुष द्वारा लिखी गयी प्रतीत होती है जो अपने को समाज का संरक्षक तथा समाज के ऊपर मानता है।' और किसी भी प्रकार के अपशब्द कहना अपने पद का विशेषाधिकार मानता है। तथापि हम नहीं समझते कि चांदखेड़ी तीर्थोद्धारक मुनिराज ने इन पत्रों को लिखा होगा। इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वीतरागता की साधना करने वाला तथा भाषा समिति को पालने वाला कोई जैन संत ऐसा लिख सकता है। लगता है कि मुनि श्री के किसी विशिष्ट श्रद्धावान भक्त ने अपनी भक्ति के अतिरेक में मुनि श्री के विरोध से चिढ़कर इन पत्रों को लिखा होगा। विरोध इस प्रकार की धमकियों से आतंकित करने से समाप्त नहीं हुआ करते। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोधियों को भी अधिकार है। उनकी आपत्तियों का समाधान सौहार्दपूर्ण वातावरण में आपसी बातचीत से किया जाना चाहिए।

- अजित प्रसाद जैन

प्रधान सम्पादक

कतिपय विलक्षण जैन मूर्तियाँ

- डॉ. शशिकान्त

भारतीय प्रतिमा विधान में वृक्ष का विशेष स्थान है और वह जीवनी-शक्ति का, सन्तानोत्पत्ति का तथा जीवन की प्रगतिशीलता का प्रतीक है। जैनों और बौद्धों में वृक्ष का सम्बन्ध अर्हत् पद की प्राप्ति से है। सभी तीर्थंकरों को केवलज्ञान किसी न किसी वृक्ष के नीचे ही हुआ, बुद्ध को भी। डॉ. यू. पी. शाह ने अकोटा से प्राप्त एक कांस्थ वृक्ष का उल्लेख किया है और उन्होंने जैन परम्परा में वृक्ष का उपरोक्त महत्व ही सूचित किया है, किन्तु मुझे कल्पवृक्ष की पूजा का एक सुनिश्चित सन्दर्भ मिला है। हाथी गुंफा शिलालेख के अनुसार सम्राट् खारवेल जब मथुरा की स्तूप पूजा के लिए गया तो वह अपने साथ कल्पवृक्ष की एक अनुकृति भी ले गया था। इससे सिद्ध होता है कि जैनों में दूसरी शती ईसा पूर्व में भी कल्पवृक्ष की अनुकृतियों की पूजा का प्रचलन था। सम्भव है अकोटा से प्राप्त धातुमयी वृक्ष भी कल्पवृक्ष की ही अनुकृति हो।

सन् १९५७ में जब मैं राजगृह गया था तो मैंने वहाँ वैभारगिरि पर एक प्राचीन मंदिर के भग्नावशेषों में एक ऐसी तीर्थंकर-प्रतिमा देखी थी कि जिसके सिंहासन पर एक स्त्री करवट से लेटी अंकित थी। वहीं कृष्ण-पाषाण का एक ऐसा चौबीसी पट देखा जिसके सबसे ऊपरी पंक्ति में ७, उससे नीचे की पंक्ति में ८ और तीसरी पंक्ति में भी ८ जिन मूर्तियाँ थीं तथा मध्य में सिंहासन पर एक पद्मासन जिनमूर्ति थी, जिसके बाईं ओर विश्राम मुद्रा में लेटी हुई एक स्त्री मूर्ति अंकित थी। उसके पैरों की ओर एक परिचारिका पैर दबाती हुई दिखाई गई थी। उससे और नीचे एक लेटी हुई पुरुषमूर्ति थी। जिन प्रतिमा के दाईं ओर एक पुरुष उकडू बैठा हुआ था और उसके पास में दो बच्चों को गोद में लिए एक स्त्री अंकित थी। सिरे पर एक पुरुषाकृति थी जो पूरे पट्ट को उठाए हुए दिखाई गई थी।

राजगिरि के पुराने श्वेताम्बर मंदिर के भण्डार में एक अन्य ऐसी मूर्ति देखी जिसमें जिन प्रतिमा के सिर के ऊपर एक लेटी हुई स्त्री अंकित थी। जिन-प्रतिमाओं में स्त्रियों के इस प्रकार के अंकन जैन प्रतिमा विधान की दृष्टि से अद्भुत एवं विरल हैं।

कौशाम्बी (कौशाम्ब) के खण्डों में विभिन्न नापों के कई लेखांकित आसनपट्ट मिले हैं। लेखों से प्रगट है कि ये आसनपट्ट जैनगुरुओं के बैठने के लिये बनाये जाते थे। लेख वर्ष ८५ से लेकर ८८ तक के हैं। इन लेखों में जिन आर्यदेव का उल्लेख है वह लगभग उसी काल के मथुरा के शिलालेखों में उल्लिखित आर्यदेव से अभिन्न प्रतीत होते हैं, ऐसा डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का मत है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उनके द्वारा नामांकित सरस्वती आन्दोलन का विस्तार मथुरा से कौशाम्बी तक तो था ही।

मथुरा से प्राप्त राजकीय संग्रहालय की सरस्वती प्रतिमा जिस गोदोहन मुद्रा में बैठी हुई बनाई गई है वह जैन प्रतिमा विधान में अपना अकेला उदाहरण है। उत्तरकालीन हनुमान मूर्तियाँ कभी-कभी इस मुद्रा में बैठी पाई गई हैं।

लखनऊ संग्रहालय में पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ बैठी हुई, बिना सिर की, नग्न स्त्री की एक मूर्ति सुरक्षित है। कुछ विद्वानों ने यह अनुमान प्रकट किया है कि यह किसी जैन स्त्री संत या तीर्थंकर की मूर्ति है, किन्तु वस्तुतः उस मूर्ति में तीर्थंकर या अर्हत् प्रतिमाओं का कोई भी चिन्ह लांक्षन, श्रीवत्स आदि नहीं है, ना ही उस पर कोई लेख अंकित है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन का अनुमान है कि वह तपस्यारत पार्वती की, अथवा किसी योगिनी या जैनेतर स्त्री सन्त की मूर्ति हो सकती है।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६ ००४

जिनवाणी

माणसत्त भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।
मूलच्छेएण जीवाण, नरग तिरक्खित्रण धुवं।।

- उत्तराध्ययन

(मनुषत्व मूलधन है, देवगति लाभ रूप है और जो मनुष्य नरक तथा तिर्यक् गति को प्राप्त होता है वह अपनी मूल पूंजी भी गंवा देने वाला मूर्ख है।)

अष्टानिह्का पर्व पर विशेष-

कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान

- डॉ. कपूर चन्द जैन

भाव शुद्धि के लिये विशेष पूजा विधानों में "सिद्धचक्र विधान" सबसे प्रमुख है क्योंकि इसमें सिद्ध-भगवन्तों का गुणगान किया गया है तथा सिद्ध-पद प्राप्ति की प्रक्रिया भी बतलाई गयी है। आज तो विधानों की संख्या बहुत है, नये-नये विधान हाल के वर्षों में लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं किन्तु कुछ दशक पूर्व तक विधान का अर्थ ही 'सिद्धचक्र विधान' था। इस विधान का आयोजन किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु 'अष्टाह्निक पर्व', जो वर्ष में ३ बार- फाल्गुन, आषाढ़ और कार्तिक मास में शुक्लपक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक मनाया जाता है, में ही इसका आयोजन कब और क्यों प्रारम्भ हो गया यह स्वतन्त्र शोध का विषय है। सम्भवतः अष्टाह्निक पर्व के आठ दिन तथा इस विधान की आठ पूजायें होने से इसका आयोजन उक्त पर्व में होने लगा है। यह भी विचारणीय है कि इस विधान का सम्बन्ध श्रीपाल-मैनासुन्दरी की कथा से कब से और कैसे जुड़ गया।

प्राचीन "सिद्धचक्र विधान" संस्कृत भाषा में है। हिन्दी का प्रचलन जन-जन में बढ़ने पर जब अन्य पूजा-विधान हिन्दी में रचे जाने लगे तब इस विधान की भी हिन्दी में आवश्यकता अनुभव हुई। इसकी पूर्ति सहारनपुर जनपद के कस्बा नकुड़ में १८३४ ई. में धर्मपरायण लाला शीलचन्द के घर जन्मे कविवर पं. सन्तलाल ने की।

आरम्भिक शिक्षा नकुड़ में ही ग्रहण करने के अनन्तर सन्तलाल ने रुड़की के थॉमसन कालेज में अध्ययन किया और प्रतिष्ठित परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु धर्म के प्रति गहन आस्था और समर्पण के कारण उसे जीविकोपार्जन का साधन नहीं बनाया। घर पर रहकर ही जैन शास्त्रों का अध्ययन कर स्व अध्यवसाय से वह अच्छे विद्वान बने। बताया जाता है कि **'परीक्षामुख'** और **'प्रमाण परीक्षा'** सरीखे न्याय और तर्क शास्त्र के ग्रन्थों में उनकी अच्छी गति थी और शास्त्रार्थ में लोग उनका लोहा मानते थे। तत्कालीन प्रसिद्ध तर्कशास्त्री पं. ऋषभदास सन्तलाल को अपना गुरु मानते थे। तर्क शास्त्र के पण्डित होने के साथ ही सन्तलाल छन्दशास्त्र के अप्रतिम ज्ञाता हिन्दी के सुकवि थे। उनकी विद्वत्ता का सराहनापूर्ण उल्लेख नकुड़ निवासी बाबू सूरजभान वकील ने भी किया है।

संस्कृत 'सिद्धचक्र विधान' के आधार पर पं. सन्तलाल द्वारा हिन्दी में विरचित यह विधान मात्र अनुवाद नहीं है अपितु मौलिकता भी लिये हुये है और रचयिता की काव्य प्रतिभा का परिचायक है। विविध छन्दों में आठ पूजाओं या आठ अध्यायों के माध्यम से पं. सन्तलाल ने सिद्धों के गुणों का जो वर्णन किया है वह अनूठा है। रस, छंद, अलंकार, आदि सभी दृष्टियों से यह विधान महाकाव्य पद का अधिकारी है। पं. सन्तलाल की यह एकमात्र कृति उन्हें हिन्दी जैन कवियों के उच्चासन पर विराजमान कराने के लिये पर्याप्त है। कहा जाता है कि यह कृति बहुत समय तक सहारनपुर निवासी लाल रुडामल शामयाना वालों के पास पड़ी रही और बाद में उनके तथा सूरत के श्री मूलचंद किसनदास कापड़िया के प्रयासों से प्रकाश में आई। फाल्गुन, विक्रम संवत् २००५ में, कोलकाता की भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था द्वारा प्रकाशित पं. सन्तलाल का यह छन्दोबद्ध **'श्री सिद्धचक्र विधान'** ५६० पृष्ठों में है।

सिद्धचक्र विधान की महत्ता उसके धार्मिक काव्य होने से तो है ही वह साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज अतुकान्त कविता का युग है, छन्दोबद्धता आज कविता का अनिवार्य अंग नहीं, परन्तु नई कविता से पूर्व लगभग सभी काव्यशात्रियों ने छन्दोबद्धता को काव्य का मूल आधार स्वीकार किया था। कविवर सन्तलाल जी की विशेषता है कि उन्होंने उस समय हिन्दी में प्रचलित दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि ख्यात् छन्दों के साथ-साथ अल्पख्यात पद्धरी, गीता, त्रोटक, अडिल्ल, कामिनी सुन्दर आदि सभी छन्दों का प्रयोग इस विधान में किया है। सभी छन्द शास्त्रीय कसौटी पर खरे उतरते हैं। इतना ही नहीं संस्कृत के इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वसन्ततिलका, भुजंगप्रयात आदि छंदों को हिन्दी में यथावत स्वीकार कर और तदनुरूप रचनाकर सन्तलाल जी ने हिन्दी में नई परम्परा का 'ऊँ नमः सिद्धेभ्यः' किया है। लोक गीतों से विकसित लावनी का प्रयोग तथा लोक गीतों की धुन पर कतिपय पद्यों की रचना भी कवि ने की है। वानगी के तौर पर तीन पद्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

भुजंगप्रयात-

मनोयोग क्रोधी समारम्भ धारी, सदा जीव भोगे महाखेद भारी।
महानंद आख्यात को भाव पायो, नमों सिद्ध सो दोष नाहीं उपायो।।

गीता-

निज आत्मरूप सुतीर्थ मग नित सरस आनन्द धार हो।
नाशे त्रिविधमल सकल दुखमय, भवजलधि के पार हो।।

लावनी -

तुम परमपूज्य परमेश परमपद पाया।
हम शरण गही पूजैं नित मनवचकाया।।
निजरूप मगन मन ध्यान धरै मुनिराजै।
मैं नमूं साधु सम सिद्ध अकंप विराजै।।

शान्त रस प्रधान पूरी कृति में अध्यात्म की जो धारा बह रही है उसमें अवगाहन कर न जाने कितने भव्य जीवों ने अपने कल्याण का पथ प्रशस्त किया होगा। इसकी भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है, जिसमें देशी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत के प्रभाव से प्रभावित एक पद्य है -

जय अमल अनूपं शुद्ध स्वरूपं निखिल निरूपं धर्म धरा।
जय विघन नशायक मंगलदायक तिंहु जगनायक परमपरा।।

शब्दालंकारों में अनुप्रास सन्तलाल का प्रिय अलंकार है, इसका सातिशय प्रयोग पूरे काव्य में पदे-पदे देखा जा सकता है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का बहुधा प्रयोग हुआ है। उभयालंकार संसृष्टि का भी प्रयोग हुआ है। तीनों के एक-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं-

शब्दालंकार - अनुप्रास -

जय मदन कदन मन करण नाश, जय शान्तिरूप निज सुख विलास।
जय कपट-सुभट पट करन सूर, जय लोभ क्षोभ मद दम्भ चूर।।

अर्थालंकार - उपमा -

फैली दीपन की जोति, अति परकाश करै।
जिम स्याद्वाद उद्योत, संशय तिमिर हरै।।

उभयालंकार - उत्प्रेक्षा - रूपक की संसृष्टि -

तुम चरण चन्द्र के पास पुष्प धरैं सोहें,
मानू नक्षत्रन की रास सोहत मन मौहें।
अन्तरगत अष्ट स्वरूप गुणभई राजत हैं,
नमूं सिद्धचक्र शिवभूप अचल विराजत हैं।।

इस प्रकार **सिद्धचक्र विधान** भाषा, भाव, रस, छन्द, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से असाधारण आध्यात्मिक साहित्य कृति है इसका साहित्यिक मूल्यांकन एक काव्य की दृष्टि से भी होना चाहिये।

- अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, श्री कुन्दकुन्द जैन
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खतौली-२५१२०८१

निर्वैर एवं क्षमा के प्रतीक : भगवान पार्श्वनाथ

– **डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल**

इस युग में आत्मविज्ञान के आद्य प्रवर्तक आदि ब्रह्मा ऋषभदेव जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर हुये। नारायण कृष्ण के चचेरे भाई अरिष्टनेमि, महाभारत काल में जैनधर्म के २२वें तीर्थंकर हुये। उनके बाद ऐतिहासिक महापुरुष पार्श्वनाथ हुये जो जैनधर्म के २३वें तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्ध हुये। राजकुमार पार्श्व काशी के इच्छ्वाकुवंशी महाराज अश्वसेन के पुत्र थे। उनकी माँ का नांम वामा देवी था। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने जैनधर्म के श्रावक व्रत लिये। तीस वर्ष की आयु में सिद्धों को नमस्कार करते हुये राजकुमार पार्श्व ने राज्य वैभव का त्याग कर स्वतः जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की और चार माह सतत आत्म-साधना कर कैवल्य प्राप्त किया और तीर्थंकर हो गये। इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर ने समोशरण की रचना की। तीर्थंकर पार्श्व ने ६९ वर्ष ८ माह धर्मोपदेश देकर चातुर्याम धर्म-तीर्थ की स्थापना की और अंत में १०० वर्ष की आयु में झारखण्ड राज्य स्थित श्रीसम्मेदशिखर से ईसा पूर्व ७७७ में श्रावण शुक्ल सप्तमी को सिद्धत्व प्राप्त किया। पार्श्वनाथ के वहाँ से हुए निर्वाण के कारण वह पर्वत 'पारसनाथ पर्वत' भी कहलाता है। पार्श्व बाल ब्रह्मचारी थे। उनका चिन्ह सर्प था। पार्श्वनाथ के जीव की जीवन यात्रा क्षमा, निर्वैर, सद्विश्वास एवं परोपकार के अतिमानवीय गुणों से परिपूर्ण एवं प्रेरणादायक है।

विपरीत स्वभावी दो भाइयों की सह–जीवन यात्रा :–

जीवन विकास क्रम में पार्श्वनाथ के जीव के पूर्व भव अनेक निर्मम घटनाओं से भरे हैं जिनकी उपेक्षा कर उसने आत्म-विकास की धारा अबाधित रखी। पार्श्व का जीव जन्म-जन्मांतरों से सद्-विश्वास, क्षमा, शांति, परोपकार, करुणा के भावों से भरा आत्मवैभव पाने को तत्पर और समर्पित रहा जबकि उनके पूर्व भव के बड़े भाई कमठ का जीव विश्वासघात, वैर-क्रोध, व्यसन, कृतघ्नता, प्रतिहिंसा एवं कुमार्गी कुत्सित भावनाओं का प्रतीक बना पतन की कहानी कहता है। इन दो विपरीत स्वभावी जीवों की घटनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि जन्म-जन्मांतर से बँधे हुये राग-द्वेष का विनाश-शमन प्रायः नहीं होता, यदि होता है तो बड़े पुरुषार्थपूर्वक होता है।

सागरों वर्षों की भवांतरिक यात्रा में नौ भव पूर्व दोनों जीव कमठ और मरुभूति भाई के रूप में सम्राट अरविन्द के युगल मंत्री थे। बड़ा भाई कमठ दुराचारी, व्यसनी एवं विश्वासघाती था। छोटा भाई मरुभूति सदाचारी, उदार और धार्मिक वृत्ति का था। छोटे भाई की पत्नी के साथ दुराचार करने पर सम्राट अरविन्द कमठ को देश निकाले का दण्ड देता है और वह कुमार्गी तापस बन जाता है। छोटा भाई मरुभूति कमठ को सन्मार्ग ग्रहण करने हेतु समझाता है, किन्तु तीव्र वैर भावना से कमठ क्रोधित हो मरुभूति की पत्थर पटक कर हत्या कर देता है। इस भव से कमठ का जीव वैर-द्वेष के तीव्र परिणामों को लेकर जीवन यात्रा करता है और अनेक भवों तक मरुभूति के जीव की निर्मम हत्या करता रहता है।

राजकुमार पार्श्व द्वारा सर्प युगल की रक्षा :–

करुणा भाव के चमत्कार को दर्शानेवाली राजकुमार पार्श्व के जीवन की एक घटना महत्त्वपूर्ण है। पार्श्वकुमार का नाना राजा महीपाल पत्नी शोक से विचलित होकर वन में हठयोग की साधना हेतु पंचाग्नि तप में निमग्न था। संयोग से सोलहवर्षीय पार्श्वकुमार उसके पास से निकले। अवधिज्ञान से उन्हें ज्ञात हुआ कि खोखली लकड़ी में एक नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है। पार्श्वकुमार ने नाना तापस से यह बात कही। तापस क्रोधाग्नि में जल उठा और उसने लकड़ी को फाड़ा जिसमें दो-दो टुकड़ों में तड़फते हुये नाग-नागिन उछल पड़े। पार्श्वकुमार ने करुणापूर्वक नाग युगल को णमोकार मंत्र का भाव-भासन कराया। भावों की विशुद्धता से दोनों जीव मरकर धरणेन्द्र-पद्मावती नामक देव-देवांगना बनें। वहीं कुमार्गी तापस का जीव तिरस्कार की भावना में जलता हुआ हठयोग की तपस्या से निम्न कोटि का सम्वर देव हुआ।

सम्वर देव का पार्श्व मुनिराज पर उपसर्ग और जीवन परिवर्तन :–

मुनिराज पार्श्व शुद्धात्मा की उपलब्धि हेतु ज्ञायक आत्मा के स्वरूप में निमग्न थे। वे समस्त अंतरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग कर शुद्धात्म स्वरूप अहिंसा की साधना कर रहे थे। उनका लक्ष्य था समस्त संयोग और संयोगी भावों के परित्यागपूर्वक सहज ज्ञायक-दर्शक भाव की प्राप्ति और शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय की एकरूपता। संयोग से आत्मसाधनारत मुनिराज पार्श्व के ऊपर सम्वर देव का विमान

रुक गया। सम्वर देव को कुअवधिज्ञान से मरुभूति के जीव के प्रति जन्म-जन्मांतरों के वैर भाव का ज्ञान हुआ। क्रोधाग्नि में भड़क कर सम्वर देव मुनिराज पार्श्व को विचलित करने हेतु सात दिन तक निरंतर भयंकर उपसर्ग करता रहा। मुनिराज पार्श्व आत्मस्वरूप में निमग्न--अविचलित रहे। उसी समय धरणेन्द्र और पद्मावती ने उपसर्ग के शमन हेतु मुनिराज पार्श्व पर सहस्त्रफणों की छतरी बनाकर अपने रक्षक की रक्षा के शुभ-भावों का पुण्य बंध किया।

एक ओर सम्वर देव कमठ का जीव वैरभाव की तृप्ति हेतु मुनिराज पार्श्व पर भयंकर उपसर्ग कर रहा था और उनकी रक्षा के शुभ भावों से नागयुगल के जीव उनकी रक्षा में तत्पर थे, वहीं दूसरी ओर मुनिराज पार्श्वकुमार जगत की घटनाओं से बेखबर आत्मा के सहज ज्ञायक स्वरूप का रसपान कर रहे थे और ज़ड़ कर्मों के कथित बंधन तड़-तड़ स्वतः टूट रहे थे। इसी क्रम में एक समय ऐसा आया जहाँ मोहनीय कर्मबंधन के क्षयपूर्वक उनके अनंत ज्ञान-दर्शन एवं वीर्यगुण अपनी परिपूर्णता में प्रकट हो गये और वे तीर्थंकर हो गये। लोक कल्याणकारक समवशरण धर्म सभा की रचना हुई, जहाँ वैरभाव की ग्लानि में डूबा सम्वर देव तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित होकर आत्मार्थी बन गया। जन्म-जन्मांतरों का वैरभाव-वीतरागी तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समत्व-शांत-निर्वैर स्वभाव के समक्ष नतमस्तक हो गया। कमठ के जीव का रूपांतरण हुआ और वह सन्मार्गी हो गया। धरणेन्द्र-पद्मावती के जीव भी पार्श्व तीर्थंकर के भक्त बने, सन्मार्गी हुए।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं पद्मावती देवी की पूजा का विकृत स्वरूप :—

अकर्त्ता-अभोक्ता, ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप आत्मा की प्राप्ति परम-पारिणामिक भाव रूप ज्ञायक भाव के आश्रयपूर्वक होती है। इसमें पर-निमित्तिक शुभ-अशुभ भाव बाधक हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ वीतराग मार्ग के प्रस्तोता- मार्गदर्शक हैं। उनकी आराधना शुद्धात्मा एवं वीतरागता की आराधना- साधना है। इसी कारण पंच-परमेष्ठी भगवंतों को इष्ट मानकर उनकी अष्ट द्रव्य से पूजा की जाती है। सम्यक्त्वधारी व्रती-अव्रती श्रावक या देवी-देवता आदि अष्टद्रव्य से पूजा के अधिकारी नहीं हैं। वे परस्पर सम्मान एवं वात्सल्यभाव के पात्र हैं। मिथ्यादृष्टि, कुमार्गी, असंयमी तो इसके भी पात्र नहीं, यही जिनेश्वरी आज्ञा है।

परोपकार एवं रक्षा-सुरक्षा के शुभ-भाव कर्मों के आस्रव और बंध के कारण हैं। इन भावों के धारी, भले ही कितने ही चमत्कारी क्यों न हों, वीतराग मार्ग में पूजा-आराधना के अपात्र हैं। भौतिक उपलब्धि की अज्ञानमयी अवधारणा के कारण वर्तमान में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के भक्तों द्वारा देव-युगल और उसमें भी नारी पद्मावती देवी की पूजा-भक्ति अष्ट द्रव्य से की जाने लगी है। क्षेत्रपाल पद्मावती देवी की पूजा की परम्परा जैनागम और वीतरागी आर्ष परम्परा के प्रतिकूल है।

धरणेन्द्र और पद्मावती जिनशासन के रक्षक देव होने के बाद भी असंयमी होने से पूजा के पात्र नहीं हैं। जहाँ तक चमत्कार का प्रश्न है, कोई किसी के परिणमन और भवितव्य को नहीं बदल सकता। सभी को अपने शुभ-अशुभ भावकृत फलों को भोगना पड़ता है। इसके विपरीत मान्यता अज्ञानतापूर्ण है। इस दृष्टि से किसी को इष्ट और आराध्य बनाने के पूर्व गम्भीर सोच-विचार की आवश्यकता है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ के वीतरागता के आदर्श के आलोक में विवेकपूर्ण निर्णय कर रागी-असंयमी देवी-देवताओं एवं गृहस्थ महानुभावों की पूजा, आराधना एवं भक्ति आदि नहीं करें। अन्यथा अज्ञान में हम वीतरागता के प्रति विश्वासघात कर रहे होते हैं। क्या हमें यह इष्ट है, विचार करें।

अपना अंतरंग परखें :–

विश्वासघाती, व्यसनी कमठ और सद्विश्वासी, परोपकारी मरुभूति के जीवों की सहोदर जोड़ी अभी भी समाज और परिवारों में सहज ही देखने को मिल जाती है जहाँ कभी-कभी पितृ-तुल्य बड़े भाई के विश्वासघात एवं कृतघ्नता से परिवार अपमानित और खंडित हो जाता है। ऐसी घटनाएँ जन्म-जन्मान्तरों के वैरभाव एवं निर्वैर-क्षमाभाव की विद्यमानता का बोध कराती हैं। आत्म-निरीक्षण कर यह सुनिश्चित करने का अवसर है कि बाह्य-दिखावे एवं क्रूर-कपटाचार के बीजरूप में कमठ समान वैरभाव एवं विश्वासघात कहीं हमारे अभिप्राय में तो नहीं फुफकार रहा है। यदि ऐसा है, तो वीतरागी निर्वैर-क्षमा के प्रतीक तीर्थंकर पार्श्वनाथ की शरण में जाकर वैर-भाव का शमन करना ही जीवन को सार्थक करना है। यही ज्ञायक-क्षमा-स्वभावी आत्मा की आराधना भी होगी। जय तीर्थंकर पार्श्वनाथ!

बी- ३६९, ओ. पी. एम. कालोनी
अमलाई पेपर मिल, जिला-शहडोल-४८४११७ (म. प्र.)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर का अहिंसा सन्देश

- डॉ. श्रीमती सूरजमुखी जैन

आज विश्व में हिंसा का तांडव नृत्य हो रहा है। भौतिकता की चकाचौंध में स्वार्थान्ध मानव अधिक से अधिक भोग विलास तथा सांसारिक सुख सुविधा की प्राप्ति के लिये हिंसक पशु से भी अधिक क्रूर, कठोर और निर्दय बना हुआ है। धार्मिक उन्माद के कारण भी प्रतिदिन असंख्य निर्दोष मानवों की निर्मम हत्या हो रही है। आतंकवाद ने सारे संसार को भयभीत किया हुआ है। किसी का जीवन सुरक्षित नहीं है।

धर्मप्राण भारतवर्ष में निरीह पशुओं की निर्मम हत्या कर मांस का निर्यात किया जा रहा है, कहीं गर्भस्थ कन्या शिशु की गर्भ में ही हत्या की जा रही है तो कहीं दहेज की बलिवेदी पर बहुओं को जलाकर मारा जा रहा है। माँ को अपनी संतान प्राणों से भी अधिक प्यारी होती है, वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी संतान की रक्षा करती है, किन्तु भुखमरी से तंग आकर माँ के द्वारा ही अपनी कई संतानों की हत्या कर स्वयं आत्महत्या की घटनाएं भी यत्र-तत्र घटित हो रही हैं। पाशविक प्रवृत्तियों से मानव को विमुख कर उनके अंदर क्षमा, दया, स्नेह, सहानुभूति तथा सह अस्तित्व आदि अहिंसक भावनाओं को जागृत किये बिना मानवता का विकास संभव नहीं है।

आज की परिस्थितियों में भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'जिओ और जीने दो' का सिद्धान्त ही विश्वशांति का एकमात्र उपाय है। जीना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है तो दूसरों को जीने देना उसका कर्तव्य है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्यपरायण होना भी आवश्यक है। कर्तव्य के स्वरूप का निर्धारण अहिंसात्मक विचारों द्वारा ही संभव है।

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व इन सबका एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध है। कुछ व्यक्तियों का समूह परिवार, कुछ परिवारों का समूह समाज, कुछ समाजों का समूह राष्ट्र और सभी राष्ट्रों का समूह विश्व कहलाता है। विश्व शांति के लिये प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अहिंसक भावनाओं का जागृत होना आवश्यक है। भावनाओं में संक्रामकता होती है, एक व्यक्ति के भावों का प्रभाव उसके सम्पर्क में

आने वाले अन्य व्यक्तियों पर भी निश्चित रूप से पड़ता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों को अहिंसक बनाने का प्रयत्न करे तो निश्चय ही विश्व में शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाय।

हिंसा दो प्रकार की होती है- द्रव्यहिंसा और भावहिंसा। अपने अथवा दूसरों के प्राणों का घात करना द्रव्यहिंसा है और अपने अथवा दूसरों के भावों में हिंसात्मक विकार उत्पन्न करना भावहिंसा है। मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना से दोनों प्रकार की हिंसा से बचना ही अहिंसा है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी प्राणियों की सुरक्षा तथा उनकी सुख शांति का प्रयास निहित है। संकल्पी, आरंभी, उद्योगी तथा विरोधी चार प्रकार की द्रव्यहिंसा होती है, गृहस्थ संकल्पी हिंसा का ही पूर्ण त्याग कर सकता है, किन्तु आवश्यक सांसारिक कार्यों को करते समय भी यथाशक्ति सावधानीपूर्वक जीवहिंसा से बचने का प्रयत्न कर वह अहिंसक हो सकता है। रागद्वेष न होने तथा सावधानी रखने पर भी यदि किसी व्यक्ति से किसी प्राणी का अनजाने में घात हो जाय तो वह हिंसा नहीं है। इसके विपरीत रागादि भाव होने तथा असावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करने पर प्राणीघात हो या न हो हिंसा अवश्य होती है।

द्रव्यहिंसा से भी अधिक घातक भावहिंसा है। वैर वैमनस्य, द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या, दुःसंकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अहंकार, दंभ, लोभ, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियां हैं, विकृतियां हैं, वे सब हिंसा का ही रूप हैं। क्रोध को क्रोध से नहीं, क्षमा से; अहंकार को अहंकार से नहीं नम्रता से; लोभ को लोभ से नहीं, संतोष से जीतने का प्रयत्न ही अहिंसा है। अहिंसा के द्वारा बुरे से बुरे व्यक्ति के हृदय को परिवर्तित किया जा सकता है। वही व्यक्ति अहिंसक है जो सबको अपने समान समझता है और दूसरों के द्वारा किये जाने वाला जैसा व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगता वैसा व्यवहार वह दूसरों के प्रति नहीं करता है। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का आदर्श ही सुख शान्ति का सर्वोत्तम मार्ग है।

अहिंसा धर्म की रक्षा के लिये भगवान महावीर ने अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को भी आवश्यक बताया है। अपने तथा दूसरों के भाव प्राणों के घात का कारण होने से झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह भी हिंसा ही हैं।

अहिंसक व्यक्ति के हृदय में सत्य के प्रति सम्मान होना चाहिये। अहिंसा और सत्य एक दूसरे के पूरक हैं। केवल असत्य वचन ही नहीं, अप्रिय, कटु, कठोर और निन्दा के शब्द भी अपने तथा दूसरों के भावों को विकृत करने के कारण असत्य ही माने गये हैं। पारिवारिक कलह और अन्तर्द्वन्द्व का कारण प्रायः कटुवाणी का प्रयोग और व्यंग्य वाक्यों का प्रहार ही हुआ करता है। अतः ये भावहिंसा के कारण हैं।

अहिंसक व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को सीमित रखते हुए मितव्ययी होना चाहिये। दिन प्रतिदिन की बढ़ती हुई असीमित इच्छाएं भोग विलास तथा ऐशोआराम की वस्तुओं की प्राप्ति के लिये मनुष्य को उचित अनुचित किसी भी प्रकार से धन संग्रह के लिये बाध्य कर देती हैं फिर वह लूट खसोट, चोरी, डकैती, अपहरण आदि बड़े से बड़ा अनर्थ करने से नहीं हिचकता। धन सम्पत्ति को मनुष्य का बाह्य प्राण कहा गया है। जो दूसरों की धन सम्पत्ति को अनुचित रूप से हड़पता है, वह उसके बाह्यप्राणों का घात करने तथा अपने परिणामों को विकृत करने के कारण हिंसक ही होता है।

अत्यधिक कामवासना भी हिंसा का कारण होती है। आज इसी उद्दाम कामवासना के कारण प्रतिदिन बलात्कार और बलात्कार के बाद हत्या के न जाने कितने समाचार सुनाई देते हैं। इस भयानक कुकृत्य से बचने का उपाय भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मचर्याणुव्रत या स्वदार संतोष व्रत है।

आवश्यकता से अधिक परिग्रह संचय की लोलुपता ही शोषण, दमन, उत्पीड़न, अन्याय और अत्याचार का मूल है। दहेज के लिये बहुओं को अनेक प्रकार की यातनाएं अत्यधिक धनलोलुपता के कारण ही दी जाती हैं। आज अपहरण और अपहरण के बाद फिरौती न मिलने पर हत्या की अनेक घटनाओं का कारण भी असीमित धन की आकांक्षा और तृष्णा है। इन सब अनर्थों से बचने का उपाय परिग्रह परिमाणव्रत ही है।

अहिंसा धर्म का विश्वधर्म के रूप में प्रचार और प्रसार करने के लिये कर्म के साथ मन का सुन्दर होना और मन के साथ वाणी का मधुर होना अपरिहार्य है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भाव के द्वारा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' के उदात्त भावों को जागृत कर मानव विश्व शांति की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

- अलका, ३५, इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर

भगवती सूत्र का मांसाहार प्रकरण– एक मीमांसा

– श्री अजित प्रसाद जैन

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डी. एन. झा की पुस्तक Holy Cow-Beef in Indian Dietary Conditions में (श्वे.) आगम **भगवती सूत्र** के आधार से भगवान महावीर को मांस का सेवन करने वाला बताया है। इस पुस्तक में अनेक धर्मों के प्रमुख महापुरुषों की आहार संबंधी शोधपरक सामग्री दी गई है। भगवती सूत्र की इस प्रसंग संबंधी गाथाओं के मांस परक एवं वनस्पतिपरक दोनों अर्थ होते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ (तेरापंथ आम्नाय प्रमुख) ने अपने लेख "मांसाहार : एक समीक्षा" जो जिनवाणी तथा अन्य कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है, में प्रो. झा के निष्कर्ष की कटु आलोचना करते हुए ठीक ही लिखा है कि

"कुछ पुस्तकों के आधार पर भगवान महावीर के मांसाहार की धारणा बनाकर अपनी पुस्तक के माध्यम से प्रचारित करना शोधपूर्ण प्रमाणिक इतिहास का तरीका नहीं है। विद्वान लेखक को प्रमाणिक मूल स्रोतों से सही तथ्यों को जानना चाहिए। --हमारा कर्तव्य है कि हम इस अप्रिय घटना का प्रतिकार अहिंसात्मक तरीके से करें।- - भगवान महावीर के मांसाहार की भ्रांति का कारण भगवती सूत्र का एक प्रसंग है। मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा तेजोलब्धि का प्रयोग किए जाने पर भगवान का शरीर पित्त- ज्वर और दाह से आक्रान्त हो गया (भगवई १५/१४६)। भगवान के शिष्य सिंह मुनि-को इस घटना से बहुत चिन्ता हुई। उनकी चिन्ता का समाधान करते हुए भगवान ने उनसे कहा - तं गच्छह णं तुमं सीहा ! मेढियगामं नगर रेवतीए णाहापतिणीए गिह तत्थण रेवतीए गाहापतिणीए ममं अट्ठाय दुवे कवोय सरीरा उवक्खडिया, तेहि नो अट्ठो, अत्थि से पारियासिए मज्जार कडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएण अट्ठो' (भगवई १५/१५२)। उक्त प्रसंग में तीन शब्द विमर्शनीय हैं- कपोत शरीर, मार्जार और कुक्कुट मांस। शब्दार्थ पर विचार करने के पूर्व देश काल और संदर्भ- इन तीन पर विचार करना आवश्यक है। चिकित्सा के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का अर्थ चिकित्सा शास्त्र में खोजना चाहिए। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं और उनका अनेक संदर्भों में प्रयोग होता है।-- आयुर्वेदीय शब्द कोश के अनुसार कपोत का एक पर्यायवाची नाम पारावत है, पारावत के फल अण्डों के समान

होते हैं। पारावतपदी को आयुर्वेद में काक जंघा या काकमाची कहते हैं जो मकोय शाक का वाचक हैं-- इसी प्रकार मार्जार चित्रक का वाचक है-- तथा कुक्कुट शितिवार (चोपतिया शाक) का वाचक है।-- आयुर्वेदीय ग्रंथों में छाल के लिए त्वचा तथा गूदे के लिए मांस शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।-- प्रारम्भ से ही जैन मुनि और श्रावक के लिए मद्य-मांस का सेवन वर्जित है।-- **ऐसी स्थिति में तीर्थंकर महावीर द्वारा मांस सेवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।"**

एक अन्य स्थानकवासी संत - प्रवर्तक श्री उमेश मुनि म. सा. 'अणु' का भी एक लेख- 'विवाद पर एक नजर- क्या भगवान श्री महावीर स्वामी ने मांसाहार किया था' जैन प्रकाश (अप्रैल २००२ द्वितीय) में प्रकाशित हुआ है। इन मुनि श्री ने भी ठीक ही लिखा है कि "जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की हिंसा को हिंसा प्रतिपादन करके उसके त्याग का उपेदश देते रहे, जिन्होंने अपने पूरे साधना काल में सर्वतः प्राणिपात से विरमण किया, वे भला मांसाहार कैसे कर सकते हैं? उनकी कथनी तथा करनी में भेद नहीं था, साधना की पूर्णता होने पर वे वीतराग हो गए थे (यह प्रसंग भगवान के केवलज्ञान प्राप्त करने के १६ वर्ष बाद का है)। - -महावीर ने धर्म की कसौटी ही अहिंसा बतलायी है। उनके धर्म प्रतिपादन में किसी भी पाप का अंश मात्र भी अनुमोदन नहीं है। उनके ढाई हजार वर्ष बाद तक उनका अनुयायी धर्म संघ पूर्णतः निरामिष भोजी है। **यदि धर्म प्रवर्तक पूर्णतः निरामिष भोजी नहीं होते तो उनकी अनुयायी संघ परंपरा कदापि निरामिष भोजी नहीं होती।**-- वस्तुतः भगवान महावीर सम्पूर्ण अहिंसा के प्रतिपादक बिरले महापुरुष हैं, वे अपने रोग के शमन के लिए मांसाहार कर ही नहीं सकते। यह बात परंपरा से ही नहीं प्रत्युत युक्ति अनुमान आगम तथा इतिहास सभी प्रमाणों से सिद्ध होती है।"

हम मुनि श्री के मन्तव्य का पूर्णतः अनुमोदन करते हैं। हमारा तो यह भी मानना है कि भगवती सूत्र की प्रश्नगत द्वय अर्थक गाथाएं वीर नि. सं. ६८० में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के निर्देशन में वल्लभी की वाचना के आधार पर आगमों का संकलन व लिपिकरण किए जाने के समय या और किसी समय धर्म द्वेषियों की साजिश से किसी लिपिकार ने महावीर तथा जैन धर्म को बदनाम करने के लिए मूल सूत्र में प्रक्षेपित कर दी होगी। क्षमाश्रमण जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि सूत्र जैसे भी क्षत विक्षत खंडित अवस्था में मिले हैं, उन्होंने संकलित कर दिए हैं, यह सम्पूर्ण मूल श्रुत नहीं हैं। ऐसे ही कुछ अन्य प्रक्षिप्त अंशों के भी मान्यता दिए जाने के कारण ही दि. जैन

आम्नाय के आचार्यों ने श्वेताम्बर आम्नाय द्वारा संरक्षित आगमों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था तथा घोषित कर दिया था कि सूत्र आगम विच्छिन्न हो गया। दिगम्बर जैन आम्नाय की मान्यतानुसार तो केवलज्ञान प्राप्ति के उपरांत की अर्हन्त अवस्था में क्षुधा-तृषा-रोग आदि की बाधाएं होती ही नहीं।

हमारे पूज्य श्वेताम्बर आम्नाय (मंदिर मार्गी, स्थानकवासी तथा तेरापंथी) के आचार्यों से क्या यह अपेक्षा करना अनुचित होगा कि वे किसी संत सम्मेलन में जैन संस्कृति दर्शन व सिद्धान्त के विरुद्ध पाए जाने वाले अंशों को गंभीर एवं सूक्ष्म गवेषणा करके आगम सूत्रों में प्रक्षिप्त हुए घोषित करके उन्हें सूत्रों के अगले संस्करणों में निकाल दें। हमारे इस मत का समर्थन श्वेताम्बर आगमों के एक गहन अध्येता तथा तत्ववेत्ता एवं तटस्थ **जैन संत** भी कर रहे हैं जिन्होंने हमारे आग्रह पर इस विषय पर अपना सुविचारित मन्तव्य निम्न प्रकार प्रषित किया हैं-

'भगवती सूत्र की (१५/१४६) गाथा प्रक्षिप्त है'- ले.- एक जैन संत

''समस्त आगमों के विच्छेद हो जाने की दिगम्बर मान्यता समीचीन नहीं है। ऐसा मानने के तो यह अर्थ होंगे कि भगवान के निर्वाण के अल्प समय बाद ही साधु आगम ज्ञान रहित हो गए थे, जो किसी प्रकार शक्य नहीं है। अतः समीचीन धारणा यही है कि श्वेताम्बर आम्नाय द्वारा **संरक्षित आगम गणधर कृत मौलिक है,** अल्प व खंडित भले ही हो गये हों। आगमों में मध्यकाल में वितंडा, वैर-विरोध के कारण प्रक्षिप्तिकरण हुए हैं, जो समीक्षा करने पर स्पष्ट समझ में आ जाता है। **आगमों के बीच मांस संबंधी पाठ भी धोखे से प्रक्षिप्त हुए हैं,** जिसमें मांस भक्षण की प्ररूपणा, प्रेरणा भी स्पष्ट होती है और तीर्थंकर का (भगवती से) और साधु का (आचारांग से) मांस भक्षण सिद्ध होता है। सूर्य प्रज्ञप्ति से जनता को मांस भक्षण की खुल्लम खुल्ला प्रेरणा मिलती है। आज भगवान के साधु श्रावक सभी मांस खाने की कल्पना भी नहीं करते और मांस सूचक शब्द बोलते भी शर्म का अनुभव करते हैं। गणधरों कृत शास्त्रों में ऐसे भ्रामक पाठ से गणधरों की बुद्धि पर भी आक्षेप जाता है कि ऐसे भ्रामक रचना करने वाले सर्वाक्षर सन्निपाती कैसे होंगे। इन प्रक्षिप्त पाठों को श्वेताम्बर साधु प्रक्षिप्त भी स्वीकार करते जाते हैं, भगवत् वाणी के विपरीत भी मानते जानते हैं और फिर वनस्पति परक अर्थ भी करते जाते हैं। यह बहुत ही दयनीय और **दुरंगी चाल जिनशासन की हीलना करने वाली है,** विकृति भी मानना, संशोधन भी नहीं करना और वनस्थपतिपरक अर्थ भी कर देना! ये लोग धर्म के ठेकेदार बनकर

तीर्थंकर गणधरों की महान आशातना करते हैं कि ऐसे विवेकहीन आगम रचना करने वाले गणधर थे कि जिनके शब्द कोश में अच्छे शब्द भी नहीं थे कि वनस्पति के लिए ऐसे मांस मच्छ कबूतर कूकड़ा, बिल्ली के अर्थ वाले भ्रामक शब्द डालकर अपनी बुद्धि का दिवाला निकालते हैं। मैं तो ऐसे दुराग्रही श्वेताम्बरियों को महामूर्खता का अविवेकपूर्ण निर्णय करने वाला समझता हूं। **वास्तव में ये द्वय अर्थी मांस परक शब्द आगम में विकृति से, द्वेष से, घुस गए हैं, घुसा दिए गए हैं,** उन्हें संशोधन नहीं करके गलत रास्ता वनस्पतिक अर्थ करने का लेते हैं। यह अपनी फिजूल की होशियारी ठोकना है। **आगमों में जहां भी विकृति आई मालूम पड़ती है जिनवाणी विरुद्ध कथन घोषित किया जाना चाहिए।** उसे संशोधित नहीं करके आगमों को छपाना महामूर्खता है। यह मेरे भाव सरल और स्पष्ट तथा निडर हृदय के हैं। इस विषय में कोई भी तटस्थ भाव से समझना चाहे तो मैं उनसे प्रत्यक्ष शास्त्र विचारना कर सकता हूं।"

वयोवृद्ध (८० वर्षीय) डॉ. पूर्णचन्द्र जैन, भूतपूर्व प्रिन्सिपल, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ, आयुर्वेद जगत के विख्यात विद्वान हैं। उन्होंने हमारे अनुरोध पर भगवती सूत्र की प्रश्नगत गाथा के मांसपरक व वनस्पतिपरक अर्थों की आयुर्वेद-चिकित्सीय दृष्टि से सूक्ष्म मीमांसा करके सिद्ध किया है कि दोनों अर्थों से बोध होने वाले औषध-द्रव्य तथाकथित रक्तातिसार रोग की चिकित्सा के लिए उपयुक्त नहीं है जिससे भी प्रमाणित होता है कि यह गाथा प्रक्षिप्त है। डा. जैन का आलेख नीचे दिया जा रहा है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा दृष्टि से मांसाहार-मीमांसा- लेखक- डा. पूर्ण चन्द्र जैन

"विभिन्न आचार्यों एवं विद्वानों ने भगवती सूत्र में आये शब्दों -'दुवे कवोय सरीरा' एवं 'मज्जार कडए कुक्कुडमंसए' की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। यदि इन शब्दों का अर्थ मांसाहार के आक्षेप के रूप में लिया जाय तब यह देखना है कि विलाव द्वारा मारे गये मुर्गे के मांस के प्रयोग से क्या दाह एवं रक्तमिश्रित दस्तयुक्त पित्त ज्वर व्याधि (जो भगवान महावीर को हो गई बताई गई है) ठीक हो सकती है। कुक्कुट मांस के आयुर्वेद में निम्न गुण धर्म मिलते हैं-

कुक्कुटः कृतवाकु स्यात् कालज्ञश्चरणायुधः।
ताम्रचूडस्तथादक्षो प्रातर्नादी शिखण्डिकः।।
कुक्कुटो वृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णानिल हृदगुरुः।
चक्षुष्यः शुक्रकफकृद् वल्योवृष्यः कषायकः।। भाव. प्र. ५९, ६०

मुर्गमांस पुष्टिकारक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, गुरु, वातनाशक, नेत्रों को हितकारक, कफ एवं शुक्रवर्द्धक, बलवर्धक, वृष्य एवं कषायी हैं। यूनानी मत से मुर्ग मांस रक्तोत्पादक, बुद्धि एवं शुक्रवर्द्धक, मृदुसाख्य, सौदाविरेचनीय और हृदय तथा मस्तिष्क को बल देता है। यह शरीर को तैयार करता है, शरीर के वर्ण को कान्ति प्रदान करता है, स्वर का परिष्कार करता है और पक्षवध (Paralysis) अर्दित्त (Facial Paralysis) आदि में लाभकारी है। **मुर्गमांस को किसी ने भी पित्त ज्वर नाशक नहीं कहा है।**

कवोय सरीरा को यदि पोत (कबूतर) शरीर मानें तो उसका भी पित्त ज्वर के शमन से कोई सम्बन्ध नहीं है। महावीर ने भी कवोय सरीरा का प्रयोजन नहीं है कहकर सिंह अनगार को उसे न लाने का निर्देश दिया था। कबूतर मांस के आयुर्वेद में निम्न गुणधर्म हैं-

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तवर्द्धनः।
पारावतोगुरुस्निग्धा रक्तपित्तानिलापहः।
संग्राही शीतलस्तज्ज्ञै कथितो वीर्यवर्द्धनः।। भाव प्र. ६८

कबूतर का मांस गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त एवं वायुनाशक, ग्राही, शीत एवं शुक्रवर्द्धक है। यूनानी चिकित्सा में इसे शीघ्रपाकी एवं अल्पाहार कहा है। यह रक्तोत्पत्ति कर कृश, दुर्बल, नपुंसक एवं कामावसाद के रोगियों को हितकारक हैं पक्षवध (Paralysis)] अर्दित (Facial Paralysis) एवं श्वास (Asthma) जैसे कफज वायु रोगों में इसका मांस हितकारी होता है।

आयुर्वेद एवं यूनानी दोनों मतों से **कुक्कुड मांस एवं कपोतमांस किसी भी प्रकार के दाह एवं रक्तमिश्रित दस्त युक्त पित्तज्वर का शमन करने में असमर्थ है।** उक्त स्थिति में भगवती सूत्र में महावीर के मांस सेवन से सम्बन्धित उल्लेख महावीर की अवमानना के लिये ही किसी व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त पाठ मालूम पड़ता है।

जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं कि भगवान महावीर, गौतम, सुधर्मा आदि गणधर तथा भद्रबाहु आदि श्रुतकेवलियों के उपरांत महावीर द्वारा कथित संपूर्ण अंग ज्ञान (११ अंग एवं १४ पूर्व) का काल दोष एवं स्मृति में क्षीणता आने से आंशिक रूप से लोप एवं विच्छेद होने लगा। दिगम्बर सम्प्रदाय इसी कारण उपलब्ध आगमों को स्वीकार नहीं करता। श्वेताम्बर सम्प्रदाय

मानता है कि आचार्य भद्रबाहु एवं स्थूलभद्र के उपरांत भी अंगज्ञान परम्परा चलती रही है तथापि कालदोष से उसके कुछ अंशों का लोप हो गया। इसी कारण पाटलिपुत्र वाचना, माथुरी वाचना एवं अन्त में वी.नि.सं. ६८० में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में वल्लभी में याददास्त के आधार पर अंगज्ञान आगमों के रूप में संकलित किया गया। आचार्य क्षमाश्रमण के उपरांत भी आगमों के कुछ अंश परिवर्तित हुये हैं।

मेरी धारणा है कि श्रमण परम्परा के दो सम्प्रदायों-भगवान महावीर की परम्परा एवं भगवान बुद्ध की परम्परा में गूढ़ प्रतिद्वन्दिता चलती रही थी और भगवान महावीर और उनके धर्म को भगवान बुद्ध की अपेक्षा उत्तम शान्ति एवं समतापरक माना जाता था अतः कुछ चिन्तकों ने आगमों में इस प्रकार के परिवर्तन करा दिये जिससे महावीर को बुद्ध से श्रेष्ठ न माना जाय। भगवान महावीर पूर्ण अहिंसक थे परन्तु बुद्ध मांस भक्षण को भी अहिंसा के अन्तर्गत स्थान देते थे।

भगवती सूत्र के भगवान महावीर के रेवती दान समीक्षा उद्धरण के शब्दों को संस्कृत भाषा के अनेकार्थमन्तव्य अर्थ से अनेक विद्वानों एवं आचार्यों ने उन शब्दों को तोड़-मरोड़कर वनस्पति परक अर्थ निकालने की कोशिश की है। यह मन्तव्य संस्कृत भाषा के अनेकार्थ शब्दों की रचना द्वारा प्रगट होता है और उनसे अन्य अर्थ निकालना विद्वानों को मुश्किल नहीं है, परन्तु मान्यता जनभाषा में प्रचलित अर्थ को ही प्राप्त होती है क्योंकि आगमों का उपदेश जन साधारण को उनकी ही भाषा प्राकृत में किया गया है। **प्रश्नगत उद्धरणों के वनस्पतिपरक अर्थ निकालने पर भी उनसे महावीर के तेजो लेश्या अभिशप्त पित्तज्वर का शमन नहीं होता।**

आइये विभिन्न विद्वानों एवं आचार्यों द्वारा रेवती दान समीक्षा में प्रयुक्त शब्दों की कार्यवत्ता व चिकित्सा के दृष्टिकोण से विचार करें।

'मज्जार कडए कुक्कुट मंसए' का साधारण अर्थ विलाव द्वारा मारे गये मुर्गे का मांस होता है। परन्तु कुछ विद्वानों ने मज्जार कडए में १-मार्जार नामक उदर वायु को शान्त करने वाला तथा २- अन्य द्वारा 'चित्रक वनस्पति से संस्कारित' अर्थ किया है। **मार्जार वायुविशेष का चिकित्सा शास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है जिससे पित्त ज्वर की शमन प्रक्रिया हो।** चित्रक के पर्याय में मार्जार एवं व्याल शब्दों के उल्लेख से अन्य आचार्य चित्रक संस्कारित अर्थ निकालते हैं। चित्रक (Plumbago zeylanica) के

निम्न गुणधर्म कहे हैं-

चित्रकमूलं दीपनीरितक्तः कटु पाके रसे लघु।
अग्निवात पाचनो रुक्षः वीर्योष्णोः रोचनो जयेत्।।
ग्रहणी कफ वाताम शोष कुष्ठोदर क्रमीन।कै०।।
चित्रकोऽनल नामा च पीठो व्यालस्तथोषणः।
चित्रकः कटुपाकेच वह्निनकृत्पाचनो लघु।।

चाव. हरी. ६८

चित्रकमूलं दीपनीय पाचनीय गुदशोथार्शशूल हराणाम्।

च.सू.

इसके योग चित्रकादिवटी, वृहन्नयिका चूर्ण एवं चित्रक हरीतिकी हैं। इनका उपयोग अग्निवर्द्धक, अनुलोमक, शोथशामक, यकृतक्रिया-सुधारक एवं वात कफ नाशक के रूप में है। **अग्निवर्द्धक होने से चित्रक पित्त का शमन न कर उसकी वृद्धि करता है अतः चित्रक संस्कारित कुक्कुट मंसए पित्त ज्वर का शमन नहीं करता है।** कुक्कुटमंस के भी विद्वान आचार्यों ने दो वनस्पतिपरक अर्थ किये हैं। प्रथम विजोरा जिसे मातुलुंग (Citrusacida) अथवा वीजपूर भी कहते हैं, के निम्न गुणधर्म कहे गये हैं-

वीजपूरो मातुलुंगे रुचक फल पूरकः।
वीजपूरफल स्वादु रसे ऽम्ल दीपन लघु।।
रक्तपित्तकरं कण्ठजिह्वा हृदयशोधनम्।।
श्वास कासारुचिहरे हृदयंतृष्णा हरं स्मृतम्।। भाव. फल. ११८

विजोरा का फल स्वादिष्ट, रस में अम्ल, अग्निदीपक, लघु, रक्तपित्त-कारक, कंठ, जिह्वा एवं हृदय शोधक, श्वास, कास अरुचिनाशक एवं तृष्णानाशक है। **इन गुणधर्मों से यह पित्त ज्वर का शमन नहीं कर सकता।**

द्वितीय अर्थ शितिवार अथवा चौपतिया शाक किया गया है। इसे चतुष्पत्री (Blepharis Edutis) भी कहते हैं, इसके निम्न गुणधर्म कहे हैं-

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः
श्रीवारकः सूचिपत्रः पर्णकः कक्कुटः शिखी।
सुनिषण्णो हिमोग्राही मोहदोषभयापहः।

अविदाहो लघु स्वादुः कषायो रुक्षर्दीपनः।

वृष्यो रुच्यो ज्वर श्वास मेदकुष्ठ भ्रमप्रणुत्।भाव० शाक. २७, २८, २६

शितिवार हिम और ग्राही होने से पित्त का शमन कर सकती है **परन्तु पित्तज्वर पर इसका कोई प्रभाव नहीं है।** यह शीत, ग्राही त्रिदोषनाशक, लघु, स्वादिष्ट, रुक्ष, दीपन, रति शक्तिवर्धक एवं रुचिकारक है तथा ज्वर श्वास मेद कुष्ठ एवं भ्रम नाशक है। **चित्रक भावित शितिवार का प्रभाव पित्त ज्वर पर नहीं है।**

भगवती सूत्र में निर्देशित कवोय सरीरा शब्द यद्यपि कबूतर वाचक है तथापि कुछ विद्वान आचार्य अनेकार्थक शब्द के रूप में कपोत से काकमाची वनस्पति शब्दार्थ निकालते हैं। आयुर्वेद में काकमाची से मकोय (Solanium Nigram) का ग्रहण होता है जिसमें निम्न गुणधर्म पाये जाते हैं-

काकमाची ध्यान माची काकाहवा चैव वायसी।

काकमाची त्रिदोषघ्नीस्निग्धोष्णास्वर शुक्रदाः। भा. गुड्. २३०

त्रिदोषशमनीवृष्या काचमाची रसायनी।

नात्युष्णशीत वीर्यं च भेदिनी कुष्ठनाशिनी।चि०

मकोय त्रिदोष नाशक, स्निग्ध, उष्ण, स्वरभेदनाशक, शुक्रवर्द्धक, तिक्त एवं कटु रसायन है। यह नेत्र रोग, शोथ, कुष्ठ, अर्श, ज्वर, प्रमेह, हिक्का, वमन एवं हृद्यरोग नाशक है। **मकोय का फल गुमची से कुछ बड़ा होता है जिसके दो फल संस्कारित कर रखना चिकित्सा की दृष्टि से हास्यास्पद हो सकता है।** अतः कपोत शब्द से काक का बोध तो परंपरा से लिया जा सकता है परं मकोय का बोध नहीं निकलता है। अन्य विद्वान कवोय सरीरा से कूष्मांड फल को ग्रहण करते हैं, कूष्मांड के निम्न गुणधर्म कहे गये हैं-

कूष्मांडं शीतलं वृष्यं स्वादु पाकं रसं लघु।

हदयं रुक्षं सरेस्यन्दि श्लेष्मलं वातपित्तजित्।कै०

कूष्मांण्डं वृहणं वृष्यं गुरुपित्ताश्रवातनुत्।भाव० फल शाक० ५०

पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालमध्य कफावहम्।सु. सू. ४६

कच्चा पेठा पित्तंशामक तथा अधपका एवं पका हुआ कफकारक है। यह मस्तिष्क एवं हृदय को बल देने वाला है। इसके बीज कृमिघ्न है। अन्तर्दाह में कूष्माण्ड स्वरस मिश्री के साथ प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग कूष्माण्डपाक के रूप में बलवर्द्धक

है और वातव्याधि उन्माद एवं अपस्मार में प्रयोग करते हैं। वासाकूष्माण्ड खण्ड के रूप में रक्तपित्त एवं क्षयज कास में तथा कूष्माण्डघृत के रूप में अपस्यार में प्रयोग होता है।

कपोत का दूसरा नाम पारावत है और पारावत पदी से काकजंघा का बोध होता है जो मकोय से पृथक है। कुछ विद्वानों ने काकजंघा को कपोत के रूप में माना है। काकजंघा के निम्न गुणधर्म कहे गये हैं।

काकजंघा हिमातिक्ता कषाया कफवातजित्।
निर्हान्त ज्वर पित्तास्र ज्वरकेड् विषकृमीन।भाव. २३४

काकमाची, काकजंघा एवं कूष्मांड में किसे कपोत के स्थान पर लिया जाय इसे मैं पाठकों के ऊपर छोड़ता हूं क्योंकि महावीर ने सिंह अनगार से स्पष्ट कहा था कि रेवती गाथा पत्नी ने यद्यपि कपोत शरीर संस्कारित कर रखे हैं परन्तु उसके वनस्पतिपरक अर्थ में उसका महावीर को प्रयोजन नहीं था इससे उन्होंने मना कर दिया, ऐसी दशा में उसके प्रयोग का सम्बन्ध नहीं दिखता।

अन्त में शास्त्रज्ञ विद्वान एवं आचार्यों से मेरा निवेदन है कि जैन धर्म के आचार शास्त्रीय सन्दर्भों को एवं जैन धर्म के सिद्धान्तों एवं श्रमण परंपरा को ध्यान में रखकर इस प्रकार के प्रक्षिप्त प्रसंगों के मूलस्रोतों एवं कारण की समीक्षा करें और जैन सिद्धान्तों एवं परम्परा के विरोधी अंशों को प्रक्षिप्त मानकर उन्हें अलग कर दें ओर तब पुस्तकाकार सिद्धान्तों का प्रकाशन करें, प्रदर्शित करें जिससे कि विद्वत्वर्ग जैनधर्म के सम्बन्ध में भ्रमित न हो।"

जिनवाणी-

समियाए धम्मे आरियहि पवेइए

- उत्तराध्ययन

(आर्य महापुरुषों ने समभाव में धर्म कहा है)

चत्तारि धम्म दारा, खंति, मुत्ति, अज्जे, गहवे ।

- स्था. ४/४

(कर्म के चार द्वार हैं - क्षमा, सन्तोष, सरलता और नम्रता)

वीर शासन जयंती के उपलक्ष्य में–

तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम

अहिंसा परम धर्म आचार।
यही है निर्विवाद श्रुति-सार।।
सभी को जीवन का अधिकार।
करो मत जीव जन्तु संहार।।
न जायेगा कुछ अपने साथ।
सभी को जाना खाली हाथ।।
करें क्यों धन-सम्पति से मोह ?
उचित है नहीं आत्म-विद्रोह।।
भुलाकर वर्धमान की सीख।
मांगते हम क्यों दर-दर भीख।।
मनुज हो करो कर्म पुरुषार्थ।
तपस्या, सेवा धर्म यथार्थ।।
व्यर्थ है राग, द्वेष, अभिमान।
आत्मवत् जड़ चेतन गुणखान।।
प्रीति से होती निर्मल दृष्टि।
नयन करते हैं करुणा-वृष्टि।।
सनातन शाश्वत सत्य विचार।
आत्म-संयम, पर हित, उपकार।।
बनें यदि जीवन का श्रृंगार।
न हो धरती पर भ्रष्टाचार।।
अमर हे वर्धमान महावीर।
खोजते शांति, हरते भवपीर।।
तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम।
तुम्हीं को चिर अनन्त विश्राम।।

– **डॉ. परमानन्द जड़िया**
५१, खत्री टोला
मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८

अर्जुन माली (नाटिका)

(गतांक से आगे)

- श्रीमती सुधा जिन्दल

तीसरा दृश्य

स्थान-घर, समय-दिन १/२ बजे का

पात्र-माँ, बच्चा और पिता

(माँ और बच्चा कृपा शंकर घर के भीतर हैं। बच्चा चटाई पर मुँह के बल उल्टा लेटा हुआ है। बाहर से दरवाजे पर दस्तक। माँ सूप में अनाज साफ कर रही है।)

माँ- "कृपा देखो। तेरे बापू आये हैं। किवाड़ी खोल दो"।

बच्चा- "मैं नहीं जाऊँगा।"

पिता- "किवाड़ा खोलो।"

माँ- "सुन रहे हो कि नहीं"।

बच्चा- "नहीं ! मैं नहीं सुनूँगा।"

मां- "हूँह। किसी की बात नहीं सुनता। मुझे ही जाना पड़ेगा।"

बापू- "कृपा, दरवाजा खोलो। मैं हूँ। तुम्हारा बापू।"

(माँ उठकर दरवाजा खोलती है) "क्या कृपा पढ़कर पाठशाल से नहीं आया?"

माँ- "यह क्या औंधे मुँह चटाई पर लेटा है।"

बापू- "क्यों, क्या हो गया?"

माँ- "अब तुम ही पूछो। (अनाज साफ करते हुए) जब देखो छोटी-छोटी बात पर अड़ जाता है। फिर कुछ भी कहो, नहीं सुनेगा।"

बापू- "क्या हो गया बेटा? क्या बात है?"

बच्चा- "हम आपसे बात नहीं करेंगे।"

बापू- "लेकिन क्यों? कुछ बात तो बताओ? तुम्हारे रूठने का क्या कारण है?"

माँ- (सूप रोककर) "जब से पाठशाला से आया है तबसे मेला जाने की हठ लगा रक्खी है। कहता है मुझे हाट जाना है। जहाँ से अपनी पपिहरी लायेगा।"

बापू- "अरे बस इतनी सी बात? हम अपने बेटे की हठ अवश्य पूरी करेंगे। क्यों कृपा? ठीक है ना?"

माँ- "जब से स्कूल से आया है एक निवाला भी मुँह में नहीं डाला।"

बापू- "नहीं, नहीं" (पुचकारते हुए) "ऐसा नहीं करते बेटा। देखो हमने कह दिया न कि हाट से अपने बेटे को पपीहरी अवश्य ले देंगे। चलो अब खुश हो जाओ।"

बच्चा- "नहीं, फिर भी आपसे बात नहीं करूंगा।"

बापू- "क्यों, अब बात क्यों नहीं करोगे?"

बच्चा- "आप रोज इसी तरह मेले लें जाने का बहाना बनाकर मुझे फुसला देते हैं और जब चलने का समय होता है तो कुछ न कुछ बहाना बना देते हैं। आप मुझसे झूठ बोलते हैं। ओह ! अपने बैल तो ठीक हैं। बैलगाड़ी भी ठीक है। मौसम भी कितना अच्छा है। फिर आप मुझे क्यों नहीं ले जाते हैं ?'

बापू- "बेटे ! तुम तो जानते हो कि हाट कितनी दूर है, मेले से लौटते रात हो जायेगी और आजकल कोई भी सांझ बीते घर से बाहर नहीं निकलता है।"

बच्चा- "लेकिन पहले तो ऐसा नहीं था बापू।"

बापू- "कृपा, जब से अर्जुनमाली नगर में मुग्दर लेकर विचरण करने लगा है तब से कोई भी नगरवासी सांझ होने के उपरांत घर से बाहर नहीं निकलता।"

बच्चा- "तो क्या वो हमको और आपको ढूंढ़ रहा है बापू?"

बापू- (स्वगत) अब इसे कैसे समझायें? अगर अर्जुन माली के विषय में इसे बताऊं तो हो सकता है इसके मन में डर समा जाये और फिर बिना कारण के कभी भी घर से बाहर निकलते हुए डरेगा।

बच्चा- "हां बापू! क्या सोच रहे हो? हम लोगों ने उसका क्या बिगाड़ा है जो हमको मुग्दर से मारेगा।?"

बापू- "हां तुम ठीक कहते हो बेटा। किन्तु कृपा वह प्रतिशोध की भावना से जल रहा है। वह हम राजगृही के वासियों से प्रतिशोध लेना चाहता है।"

बच्चा- "बापू ! यह प्रतिशोध क्या होता है?"

बापू- "अब तुम्हें कैसे समझाऊं बेटा? मेरी तो कुछ समझ ही नहीं आता।"

बच्चा- "बापू मैं अर्जुनमाली से पूछूंगा कि तुम हम लोगों को क्यों मारना चाहते हो? हो सकता है कि वो मुझे बता दे।"

बापू- ''नहीं बेटा। हम लोगों में से उसे कोई नहीं समझा सकता। इस कार्य के लिए कोई तेजस्वी महापुरुष चाहिए जो उसके क्रोध की ज्वाला अपनी तपस्या के प्रभाव से शांत कर अपने उपदेशों के प्रभाव से उसका जीवन परिवर्तन कर सके।''

बच्चा- ''तो फिर आप ही कुछ करिए ना बापू।''

माँ- ''अच्छा! अब तुम अपने बापू के साथ पहले खाना खा लो। सुबह से तुमने एक कौर भी मुँह में नहीं डाला है।''

बच्चा- ''ऐसे में तो राजगृही के नगरवासी अपने काम पर भी नहीं जा पाते होंगे बापू?''

माँ- ''क्या इस विषय में राज दरबार के राज कर्मचारी या सेना कुछ नहीं कर सकती है?''

बापू- ''प्रश्न उसको दण्ड देने का नहीं है। प्रश्न है उसके परिवर्तन का। उसकी हिंसा को अहिंसा में बदलने का। उसे सांत्वना देने का। प्रेमौषधि से उसके प्रतिशोध घावों पर लेप लगाने का।''

बच्चा- ''पर कौन करेगा यह साहसी कार्य?''

माँ- ''लोग तो उसके सामने जाने से डरते हैं। उसकी सूरत देखते ही थर- थर कांपते हैं। वह तो साक्षात मृत्यु बना हुआ है।''

बापू- ''हाँ कृपा की माँ। मैं भी इस बात को लेकर चिंतित हूँ। किन्तु कोई उपाय समझ में नहीं आता।''

माँ- ''कृपा के बापू। मैंने सुना है कि राजगृही में भगवान महावीर पधारे हैं और विशाल जनसमूह को अमृत वचनों के उपदेश देकर जीवन लाभ प्राप्त करा रहे हैं।''

बापू- ''हां सुना तो मैंने भी है।''

माँ- ''तो क्या वे अर्जुनमाली को अपने उपदेशों से रूपान्तरित नहीं कर सकते?''

बापू- ''तुमने ठीक कहा कृपा की माँ। मैं भगवान महावीर से अर्जुन माली की व्यथा-कथा कहूँगा और उनके जीवन परिवर्तन की उनसे प्रार्थना करूँगा। संभव है वह अर्जुनमाली को रूपान्तरित कर दें।''

माँ- ''मैं भी भगवान महावीर के दर्शन करूँगी।''

बच्चा- ''मुझे भी ले चलोगे ना बापू?''

बापू- ''हाँ, हम सब उनका दर्शन लाभ प्राप्त करेंगे।'' **- क्रमशः**

अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ

समाधान मांगते प्रश्न

(शोधादर्श-४२ के पृष्ठ २७५, २७७ पर श्री मनोज कुमार 'निर्लिप्त' (अलीगढ़) का आलेख 'जैन धर्म : कुछ परिभाषाएं, कुछ जिज्ञासाएं'' प्रकाशित किया गया था। इस पर हमें जस्टिस एम. एल. जैन (नई दिल्ली) की प्रतिक्रिया व समाधान प्राप्त हुए हैं जो नीचे दिए जा रहे हैं- सम्पादक)

श्री निर्लिप्त-परिभाषा- परस्परोपग्रहो जीवानाम् अर्थात प्रत्येक प्राणी एक दूसरे से उपकृत होता है-ऐसी सह अस्तित्व पूर्ण भावना एवं तदनुरूप व्यवहार जैन धर्म है।)

जस्टिस एम. एल. जैन-

'परस्परोपग्रहों जीवानाम्' पर आपकी व्याख्या अन्य टीकाकारों की तरह ही है जो मुझे सही नहीं लगती। मेरा निष्कर्ष था कि यह समझना भूल होगी कि एक जीव दूसरे जीव का केवल हित करता है किन्तु हित और अहित दोनों ही उपकार/उपग्रह/अनुग्रह की परिभाषा में सम्मिलित है। यह जीव-सृष्टि की वास्तविकता है। वही हाल जीव व पुद्गल का और पुद्गल व पुद्गल का परस्पर है।

निर्लिप्त-जिज्ञासा- कविवर द्यानतराय कृत 'दशलक्षण पूजा' में ब्रह्मचर्य धर्म-लक्षण संबंधी छन्दान्तर्गत पूजा-पंक्ति-''कूरे तिया के अशुचि तन में--'' में 'प्रयुक्त शब्द- कूरे' का क्या अर्थ है एवं यह किस भाषा का शब्द है? कूरे का अर्थ क्रूर तो प्रतीत नहीं होता है, घृणित हो सकता है, यदि घ्रणित ही है तो किस प्रकार ?

जस्टिस जैन-समाधान

आपने ब्रह्मचर्य की पूजा के बारे में सवाल किया है, वह केवल 'कूरे' शब्द तक ही सीमित नहीं है, बड़ा सवाल है जैन धर्म में नारी के स्थान का। दसलक्षण धर्म की पूजा में पूरा छन्द इस प्रकार है-

शील बाड़ नौराख, ब्रह्म भाव अन्तर लखो
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो, माता बहिन सुता पहचानों
सहें बाण बरखा बहु सूरे, टिकैं न नैन वानलखि कूरे,,
कूरे तिया के अशुचि तन में काम रोगी रति करें
बहु मृतक सड़हिं मसान माहिं, काग ज्यों चोचें भरें

संसार में विष वेल नारी तजि गए जोगीश्वरा
'द्यानत' धरम दस पैडि चढ़िकैं, शिव महल पे पग धरा
ऊँ ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्य धर्माङ्गाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य प्रायः अनर्घ्य पद हासिल करने के लिए किसी पूज्य को चढ़ाया जाता है। दस लक्षणों की समग्रता का नाम धर्म है फिर भी एक-एक लक्षण की पूजा यहां पर की जा रही है। अन्य लक्षणों की भांति केवल ब्रह्मचर्य के प्रति ही यहां अर्घ्य चढ़ाया गया है। किस लिए? ब्रह्मचर्य की पूजा करना वैसे भी कोई मानी नहीं रखता, केवल मन में ब्रह्मभाव जागृत व दृढ़ करने के लिए पूजा के रूप में यह एक साधन माना गया है।

'कूरे' शब्द का अर्थ मेरे विचार से 'क्रूर' होता है लेकिन 'वक्र' के अर्थ में भी इस शब्द का इस्तेमाल होता है। पहली पंक्ति के दूसरे चरण ''नैन बान लखि कूरे' में यही शब्द आया हैं और वहां पर इसका अर्थ 'वक्र' याने 'तिरछे' ऐसा ठीक बैठता है। नयन-वाण के लिए क्रूर (निर्दयी) शब्द का प्रयोग कम देखा गया है जबकि कुटिल, वक्र, तिरछे ऐसे विशेषण ही अक्सर लगाए गए है। इसी 'कूर' का बहुवचन 'कूरे' होता है। तीसरे चरण में भी इसका यही अर्थ है जिसके बारे में आपकी जिज्ञासा है। दर असल पहले कूरे की ही अगले चरण में पुनरावृत्ति किसी छन्द की आवश्यकता लगती है। ऐसा कुण्डलिया छन्द में होता है मगर यहां पर उसी के जैसे किसी छन्द का प्रयोग हुआ है। शायद कुछ भाषाओं में कूड़े (कचरे) को भी कूरा बोलते हैं वह भी यहां कूड़े समान तन इस मानी में आया जान पड़ता है।

जब भाव विभोर होकर लोग ऊंचे ऊंचे स्वरों में इस छन्द को बोलते हैं तब क्या वे जानते हैं कि वह 'नान्यासुतं तदुपमम् जननी प्रसूता' मरुदेवी व नाभिराय का तथा स्वयं उन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का किस भाषा में कितना अपमान कर रहे हैं जिनने एकाधिक पत्नियों से शताधिक संताने पैदा की जिनमें दो वे युवतियां भी थी जिनको ब्राह्मी लिपि व गणित का प्रथम अध्येता व प्रवर्तक तक कहा जाता है। क्या ये महिलाएं कूड़ा, अशुचि तन, सड़ती हुई लाश और विष वेल थीं और नाभिराय व आदि ईश्वर काम रोगी व कौए के मानिंद। क्या गा रहे हैं हम लोग, बाल, युवा व वृद्ध नर नारियों के सामने? कौन सी भाषा समिति है यह? ये कौन से मंगल गान के स्वर हैं?

कहते हैं ब्रह्मचर्य का मतलब है ब्रह्म में विचरण या रमण करना। भला कैसे होता है यह विचरण या रमण? शायद ध्यान से मतलब है इसका तो फिर पुरुषों द्वारा

इसकी साधना के लिए क्या यह जरूरी है कि स्त्री मात्र के प्रति इतनी निंदा, घृणा व विद्वेष पैदा किया जाए? यह किस 'वीत द्वेष' की ओर बढ़ रहे हैं वे लोग जो पूजा को पूजा ही नहीं मानते जब तक उसमें आठ प्रकार की वस्तुएं नहीं संजोई जाएं। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली नारियां अपने व्रत पर दृढ़ रहने के लिए पूजा में उचित परिवर्तन करके धवल मंगल राग में भला क्यों न गाए कुछ इस तरह-

कामरोगी कूरे पुरुष की रति की विषय क्यों बने
चंदन सम देह से विषैला नाग क्यों दें लिपटने
दें क्यों उसे शुचि स्वतन में काग के सम चोंच भरने
मन वचन तन से नरहिं तज क्यों चलें नहिं योग करने

कैसी लगेगी तब पुरुषों को यह पूजा, यह वचनावली? ऐसी एकाधिक बातें हैं जिनके बारे में शुद्ध सिद्धान्त से सामंजस्य बिठाना अत्यन्त दुष्कर खींचतान है। उन्हीं में से एक है हमारे पुराणों, शास्त्रों व पूजाओं में भरी भारी नारी-निंदा। दरअसल जब ब्राह्मण विद्वान जैन धर्म में प्रविष्ट हुए तो अपने संचित ज्ञान के साथ अपनी नारी व शूद्र विरोधी धारणाओं को भी अपने साथ लाए और उनका जैनी करण कर डाला, वर्ना कोई कारण नहीं कि जब वर्तमान काल में किसी को मोक्ष नहीं तो फिर नारी पर ही इतना निशाना साधने की क्या जरूरत थी? फिर भी जिस सख्त भाषा का प्रयोग किया गया है वह तो सर्वथा अनुचित लगती है और हमने हमारे पूर्वजों की भांति इस सबको भगवान की ही वाणी समझ कर पकड़ लिया और उसे छोड़ नहीं पा रहे हैं।

इस सिलसिले में मुझे लगता है कि महावीर तो औरतों की आजादी के हामी थे। इसका सबूत है दासी चंदना के बंधन खुलवा कर उसे आजाद करवाना और फिर उसके हाथों से भोजन ग्रहण करना परन्तु इस सीधी व क्रांतिकारी घटना को क्या बिगाड़ कर रख दिया पुराण लिखने वालों ने; उनने लिखा कि चंदना वैशाली नरेश की सातवीं बेटी थी। यह पूर्व भवों में एक बार ब्राह्मण कन्या, बाद के दो भवों में राजपुत्री, अब पुनः राजपुत्री हुई।

जब वह क्रीड़ा के लिए निकली तो एक विद्याधर (किसी के अनुसार वैशाली का सेनापति) उसे उड़ा ले गया। राजा चेतक के शासन में स्त्रियों व अराजकता की, सेना व विद्याधरों की करतूतों का यह हाल था। खैर, विद्याधर बाद में अपनी जोरू के डर से उसे जंगल में ही छोड़ कर नदारद हो गया। उस गरीब की उचित तलाश भी नहीं की गई लगती है। भटकती हुई उस युवती को एक भील ले गया। उसने उसे अपने

राजा को भेंट कर दी। भीलराज निकला कुछ शरीफ। उसने मां के समझाने पर उसे अपने मित्र को दे दिया। मित्र ने उसे ऋषभदत्त सेठ को बेच दिया। ऋषभदत्त की पत्नी ने अपने पति के नापाक इरादों से शंकित होकर घर से बाहर तो नहीं निकाला किन्तु सेठ की अनुपस्थिति में उसकी केश राशि काट डाली, बेड़ियां डालकर एक कमरे में बंद कर दिया और खाने में कांजी और कोंदो दिया। हाय, चंदना! किसी को तो एक बार भर कहती कि वह कौन है पर नहीं; शायद इस डर से कि पिता भी उस असहाय को अब स्वीकार नहीं करेंगे। यह चंदना महावीर की मौसी थी, उनके दस भाइयों व सात बहनों वाली माता प्रियकारिणी (श्वे. ग्रंथों के अनुसार उनका नाम था त्रिशला) की सबसे छोटी बहन। एक अन्य बहिन थी चेलिनी जिससे राजगृह नरेश श्रेणिक स्वयं ने बुढ़ापे में अपने पुत्र की चालाकी से शादी कर ली। वे हजरत श्रेणिक आजकल नरक में तशरीफ रखते हैं। संयोग से जब एक रोज महावीर आहार के लिए निकले तो ऋषभदत्त के घर की तरफ आ गये। वहां पर भगवान महावीर ने उस प्रताड़ित दासी चंदना को देखकर उसके बंधन खुलवाए और तब उसके हाथों से वहीं कांजी कोंदो का आहार दान भी लिया। लेकिन हमारे पुराणकार लिखते हैं कि तीर्थंकर को आहार देने की प्रबल इच्छा के कारण उसके बंधन अपने आप खुल गये। सुंदरता वापस लौट आई। नीरस आहार सरस बन गया और देवोकृत पंचाश्चर्य- रत्न[1] फूल[2] और गंधोदक[3] की वर्षा, सुगंधित वायु[4] प्रवाह और अहोदानं का निनाद[5] हुए।[6] यह बताकर पानी फेर दिया महावीर के दासी मुक्ति व नारी स्वातंत्र्य के अभियान पर। जोर दिया केवल आहार दान पर।

यह लिख रहा हूं इसलिए कि ब्राह्मण विद्वान स्त्री की आजादी के इतने खिलाफ थे कि महावीर के क्रांतिकारी कदम की सराहना न कर सके। जिनवर के शासन का वर्णन इस प्रकार से किया कि मानो जैन श्रमण भी दर असल वैदिक परम्पराओं के ही पोषक थे।

(हमारी समझ में 'कूरे तिया के अशुचि तन में' पद में प्रयुक्त शब्द 'कूरे' के अर्थ क्रीड़ा करना है तथा यह ब्रज भाषा का शब्द है। 'कूरे' का दूसरा अर्थ 'कुरेदना' भी होता है।

धर्म के दशलक्षणों के उत्तम रूप की साधना तो केवल महाव्रती साधक ही कर सकते हैं, श्रावक तो इनका स्थूल रूप में एक देश ही पालन करते हैं तथा व्यवहार में लाते हैं। इस दृष्टि से कविवर द्यानतराय विरचित दशलक्षण धर्म पूजा श्रावकों के लिए अव्यवहारिक है।

कामवासना-नारी आकर्षण पुरुष की सबसे बड़ी कमजोरी है, कामएषणा पर

*विजय पाना अति दुष्कर है। बड़े बड़े घोर तपस्वी योगी दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य व्रत की साधना के उपरांत भी इस व्रत से स्खलित होते देखे गए हैं। वही योगी जिसने अपनी अन्य सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो, कामएषणा पर विजय पाने में सफल हो पाता है और तभी वह जितेन्द्रिय कहलाता है। साधक रतिक्रिया आदि के प्रति अपने में घोर वितृष्णा जाग्रत करने के लिए ही इस प्रकार का चिन्तवन करता है। - **सम्पादक**)*

शोधादर्श-४५ के पृष्ठ ५८ पर प्रकाशित श्री लालचंद जैन (टिकैतनगर) के कुछ ज्वलन्त प्रश्न तथा अब जस्टिस एम.एल. जैन द्वारा उनका समाधान

(१) प्रश्न- क्या जिनेन्द्र देव का समवशरण विहार मुहूर्त शोध कर किया जाता है?

उत्तर- नहीं! तीर्थंकर के कैवल्य प्राप्ति के बाद ही कुबेर आदि देवता समवशरण रचना करते हैं। देवता कोई कार्य मुहूर्त आदि देखकर नहीं करते। तीर्थंकरों के और उनके लिए कार्य मुहुर्त विचार कर नहीं होते। वे जब भी होते हैं वह ही शुभ समय है। मुहूर्त विचार आदि उन ब्राह्मणों की देन है जो ब्राह्मण धर्म से श्रमण धर्म में समर्पित हुए।

(२) प्रश्न- वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों के प्रतिकूल मंदिर, जिनबिम्ब क्या अनिष्टकारी हो सकते हैं?

उत्तर- हर जिन मंदिर, जिनबिम्ब हर स्थिति में मंगलकारी है। वे कभी भी किसी के लिए भी या किसी बस्ती के लिए अशुभ हो ही नहीं सकते। ऐसा प्रचार करना कि कोई मंदिर या मूर्ति या उसकी रचना या उसके दिशाकोण। आदि केवल सारे समाज के लिए ही नहीं वरन् पूरे गांव या 'शहर के लिए अशुभ है, उन अजैन भाइयों के आक्रोश को निमंत्रण देना है जो इनकी बात मानकर मंदिर व मूर्ति की अपार हानि ही नहीं कर सकते हैं, उन लोगों पर भी उनका कहर टूट सकता है जिनने या जिनके बुजुर्गों ने मंदिर-मूर्ति की स्थापना की है- नेस्तनाबूद कर रख देंगे स्थानीय जैन समुदाय को। ऐसी अवैज्ञानिक व व्यर्थ की बातें करने वाले चाहे मुनि हों, पंडित हों, या उनके भक्त, बिचारे नादान हैं। उनकी बात पर ध्यान देना तो दूर उनकी बात न सुनना चाहिए न फैलाना चाहिए। हो सके तो ऐसे लोगों को जल्द से जल्द अपने नगर आदि से कूच करने के लिए हाथ जोड़कर निवेदन करें।

श्रावकाचार संगोष्ठी

हमारे भारत महादेश में अति प्राचीनकाल से मानव संस्कृति की दो ही मुख्य धाराएं प्रवाहित होती चली आ रही हैं- एक वैदिक संस्कृति जो कालान्तर में शैव, वैष्णव, सनातन धर्म, आर्य समाज, सिक्ख धर्म आदि अनेक सम्प्रदायों में विभक्त होकर आज समग्र रूप में हिन्दू धर्म के नाम से जानी जाती है और दूसरी श्रमण संस्कृति जिसके वर्तमान में संवाहक जैन व बौद्ध धर्म हैं। जैन धर्म का सर्वाधिक सबल पक्ष कदाचित उसका गृहस्थाचार शास्त्र या श्रावकाचार संहिता ही है जो उसकी अपनी विशेषता है तथा धर्म शास्त्र के इतिहास में बेजोड़ है। विश्व में ऐसा कोई अन्य धर्म नहीं है जिसके गुरुओं ने अपने गृहस्थ अनुयायियों के आचार पर इतना ध्यान दिया हो, उसे इतना सुव्यवस्थित किया हो। वस्तुतः आचार शास्त्र ही व्यवहार धर्म है, दर्शन और सिद्धान्त शास्त्र तो उसके औचित्य व आवश्यकता को सिद्ध करने की आधार शिला ही हैं। जैन श्रावकाचार में व्रतों का अत्यधिक महत्व है जिसके कारण किसी समय जैनी व्रात्य (व्रत धारण करने वाले) के नाम से ही जाने जाते थे।

अनुश्रुति है कि तीर्थंकर महाप्रभु भगवान महावीर स्वामी ने अपनी प्रथम देशना में सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश दिया था तथा इसीलिए आचारांग प्रथम अंग सुत्त कहलाया। तीर्थंकर महाप्रभु ने निर्भय होकर मरने की कला तो सिखाई ही, उन्होंने सुखपूर्वक जीने की कला भी सिखाई। मरने की कला का नाम है सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण अर्थात् मोह व सभी कषायों को कृष करके वीतराग भाव से समता पूर्वक देह त्याग करना। जीने की कला अर्थात् किंचित् संयम का पालन करते हुए पूर्ण स्वस्थ रहकर मर्यादापूर्वक इन्द्रियों के भोगोपभोग का भरपूर आनंद लेते हुए गृहस्थाश्रम में सुखपूर्वक जीवन यापन करना, इसी का नाम जैन श्रावकाचार है। श्रावकाचार जैन धर्म की सदाचार-संहिता है, आदर्श गृहस्थ एवं समाज के आदर्श सदस्य बनने की विधि है, आदर्श समाज संरचना का प्रयास है।

जैन धर्म में श्रावकाचार को श्रमणाचार से कम महत्व नहीं दिया गया है। श्रावकाचार की उत्कृष्ट साधना से अतुल पुण्यार्जन करते हुए अत्यल्प समय में ही केवलज्ञान तक की प्राप्ति भी संभव बताई गई है। दृष्टान्त प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत

का है जिन्हें श्रावकाचार की उत्कृष्ट साधना के फलस्वरूप मुनि दीक्षा लेकर सम्पूर्ण वाह्य परिग्रह का त्याग करते ही कुछ ही क्षणों में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। चक्रवर्ती भरत वस्तुतः श्रावक चक्रवर्ती भी थे।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के समय में इस धरा पर कर्मभूमि का प्रादुर्भाव हुआ था। ऋषभ कुमार ने प्रकृति की उदारता पर ही निर्भर रहते चले आए भोगवादी मानव को पुरुषार्थ का महत्व समझाया, पुरुषार्थ करना सिखाया, पुरुषार्थ से अपना जीवन स्तर उन्नत करने का मार्ग दिखाया। उनके मार्गदर्शन में पशुवत् जंगली जीवन विता रहे मानव ने जंगल साफ कर बस्ती बनाकर रहना सीखा, उसने जीवन स्तर उन्नत करने के लिए अपने मस्तिष्क का उपयोग कर नित नए अविष्कार करना सीखा। ऋषभदेव प्रथम समाज शास्त्री थे, उन्होंने मानव समुदाय को समाज के रूप में संगठित होना सिखाया, समाज के सब सदस्य एक दूसरे का सहयोग करते हुए सौहार्द पूर्वक जीवन यापन कर सके, इसके लिए उन्होंने आचार संहिता भी बनाई। इसी का अपरनाम जैन श्रावकाचार है जिसमें तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार संशोधन परिवर्द्धन होते रहे हैं तथा होते रहेंगे।

भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के समय तक जैन श्रावकाचार के नियम कदाचित् बहुत सरल एवं सीमित थे। साधिक दो हजार वर्ष पूर्व की एक घटना का इतिहास में उल्लेख मिलता है। वैशाली नगर के विध्वंश एवं वज्जिसंघ के छिन्न-भिन्न हो जाने के उपरांत कुछ अग्रवंशी लिच्छवि कुमारों ने विदेह देश से पलायन कर सुदूर पश्चिम में अग्रोहा (हरियाणा) में वैशाली गण तन्त्र के पैराये परदेश एक सशक्त गणतंत्र राज्य की स्थापना की थीं तथा गण प्रमुख महाराज अग्रसेन कहलाते थे। (इस राज्य के संस्थापक कुमारों को सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद एवं इतिहासकार डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'वैशालिक' वताया है)। दो हजार वर्ष से कुछ अधिक पहले अग्रोहा राज्य के गण प्रमुख महाराज दिवाकर देव अग्रसेन के शासनकाल में एक वार महान् प्रभावक दिगम्वर जैनाचार्य श्री लोहार्य अग्रोहा के वाहर उद्यान में पधारे तथा वहाँ उन्होंने वर्षायोग स्थापित किया। राजा भी अपने सामन्तों सहित उत्सुकतावश आचार्य श्री का प्रवचन सुनने चले गए। समस्त श्रोताओं सहित राजा पर आचार्य श्री के प्रवचनों एवं उनके वीतरागी व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव पड़ा कि राजा ने अपने सभी सरदारों व प्रजाजनों

सहित आचार्य श्री से जैन धर्म में दीक्षित करने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने केवल तीन नियम-देव दर्शन, रात्रि भोजन त्याग तथा छना पानी पीने का नियम देकर उन्हें जैन धर्म में दीक्षित कर दिया तथा भगवान महावीर स्वामी की एक काष्ट प्रतिमा देवदर्शन हेतु राजा को प्रदान की जिसे नगर के चौराहे पर एक भव्य मंदिर का निर्माण कर बड़े समारोहपूर्वक प्रतिष्ठित कर दिया गया। इतिहासकार लिखते हैं कि उस दिन अग्रोहा में चमत्कार हो गया। एक ही दिन में नगर के सवा लाख परिवारों में पानी के घड़ों पर छलने पड़ गए तथा रात्रि भोजन निषिद्ध हो गया।

जैन श्रावकाचार के पूर्ण विकसित एवं सुव्यवस्थित रूप के दर्शन तो दूसरी सदी के महान तार्किक आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार में ही मिलते हैं। यद्यपि परवर्ती आचार्यों ने भी कतिपय श्रावकाचारों की रचना की है तथा विभिन्न पुराण ग्रंथों में भी श्रावकाचार का विशद वर्णन मिलता है, तथापि रत्नकरण्ड श्रावकाचार आज भी अपने विषय का बेजोड़ ग्रंथ माना जाता है तथा स्वाध्यायी श्रावकों में सर्वाधिक लोकप्रिय है।

लखनऊ महानगर में इस वर्ष पूज्य आचार्य श्री पुष्पदंतसागर महाराज के सुशिष्य पूज्य मुनिद्वय श्री सौरभसागर जी तथा श्री प्रवलसागर जी का चातुर्मास हो रहा है। मुनि श्री सौरभसागर जी की प्रेरणा से एवं उनके सानिन्ध्य में दि. १५-१६ अगस्त को श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला के प्रांगण में चातुर्मास समिति द्वारा जैन श्रावकाचार पर एक राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जैन जन जीवन में श्रावकाचार के महत्व को देखते हुए संगोष्ठी के विषय का चयन अत्यधिक समीचीन था जिसके लिए आयोजकगण वधाई के पात्र हैं।

संगोष्ठी चार सत्रों में सम्पन्न हुई।

मुनि श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं। वे प्रत्येक सत्र के अंत में अपने उद्‌वोधन में वांचे गए आलेखों के विषय विवेचन व अपनी प्रतिक्रिया से विद्वज्जनों व श्रोताओं को लाभान्वित करते थे। प्रथम सत्र उद्‌घाटन सत्र था। डा. वृषभ प्रसाद जैन ने श्रावकाचार की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए विषय का प्रवर्तन किया तथा डा. कमलेश कुमार जैन वाराणसी ने अपने आलेख में विभिन्न श्रावकाचारों में प्रतिपादित अष्टमूलगुणों की विवेचना की। द्वितीय सत्र में डा. फूलचंद जैन 'प्रेमी'

वाराणसी ने जैन श्रावकाचार विषयक साहित्य पर, डा. श्रीमती नीलम जैन ने "भारतीय संस्कृति में श्राविकाओं के योगदान" पर, शोध छात्रा श्रीमती गीता ने "तिरुक्कुरल काव्य में ग्रहस्थों के नियम" पर, श्रीमती राका जैन प्रभा ने "आदि पुराण में प्रतिपादित श्रावकधर्म एवं संस्कार" पर तथा श्री कैलाशचंद्र जैन सर्राफ ने "पंचाणुव्रत" पर अपने आलेखों का वाचन किया। डा. शैलेन्द्र रस्तोगी ने अपने आलेख में राजकीय संग्रहालय लखनऊ व मथुरा में संरक्षित तीर्थंकर चरण चौकी पर पूजन दृश्य (१-२ शती) पर प्रकाश डाला। तृतीय सत्र में "जैन व्रत एवं पर्वों का वैज्ञानिक अध्ययन" तथा "गृहस्थाचार का क्रमिक विकास" पर डा. शीतलचंद्र जैन, जयपुर ने "श्रावकाचार और सम्यक्त्व" पर, डा. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत ने "श्रावक प्रतिमा विज्ञान" पर, प्राचार्य निहालचंद्र जैन, बीना ने, "अमित गति श्रावकाचार के परिप्रेक्ष्य में जैनत्व" : अपेक्षित आचार विचार" पर, पं. शिवचरनलाल मैनपुरी ने जैन एवं "बौद्ध परम्परा में आचार विषयक तुलनात्मक विवेचन" पर डा. विजय कुमार जैन, लखनऊ ने अपने आलेखों के वाचन किए। चतुर्थ सत्र समापन सत्र था जिसमें संगोष्ठी संयोजक डा. विजय कुमार जैन ने संक्षेप में सम्पन्न हुई कार्यवाही का विवरण प्रस्तुत किया तथा आमंत्रित विद्वज्जनों की ओर से डा. श्रेयांस कुमार जैन तथा डा. फूलचंद्र 'प्रेमी' ने संगोष्ठी पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। हमें भी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए आमंत्रित किया गया।

हमने अपने संक्षिप्त भाषण में श्रावकाचार के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि श्रावकाचार सदाचार की जैन संहिता है जो बृहत्तर समाज में जैन धर्मानुयायियों को वृहत्तर समाज में विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। अनेक विकृतियां आ जाने के बावजूद जैन धर्मानुयायी अपने अपेक्षतया सदाचरण व सात्विक खान-पान के लिए विख्यात हैं। यद्यपि धर्म का दर्शन व सिद्धान्त पक्ष परिवर्तनशील नहीं होता, उसकी आचार संहिता में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में संशोधन होते रहते हैं यह तथ्य श्रावकाचार की विकास यात्रा में भी परिलक्षित होता है। आज की सामाजिक परिस्थितियों में भी मेरे विचार में श्रावकाचार के पारंपरिक नियमों में कतिपय महत्वपूर्ण संशोधन करने आवश्यक हो गए हैं। आज दिगम्वर जैन समाज में पांच उदम्बर फल (बड़, पीपल, पाकर, कठूमर, गूलर) कोई नहीं खाता। बहुतों

ने इन पांचों फलों को देखा भी नहीं होगा, रखना तो दूर की वात है। इन उदम्बर फलों के खाने का त्याग अब अप्रासंगिक हो गया है, इनका उल्लेख श्रावकाचार संहिता से निकाल दिया जाना चाहिए। विक्रय किये जाने वाले पदार्थों में मिलावट करना, व्यापार करना, आयकर आदि की चोरी करना, रिश्वत लेना आदि के त्याग को अचौर्य अणुव्रत की व्याख्या में न रखकर श्रावकाचार में स्वतंत्र मूल नियमों का महत्वपूर्ण दर्जा देकर सम्मिलित किया जाना चाहिए। विवाह आदि मांगलिक कार्यों के भी दिन में ही सम्पन्न करने को मूल नियमों में रखा जाना चाहिए। खान-पान की शुद्धता तथा भक्ष्याभक्ष्य के निर्णय में ही व्यवहार में श्रावकाचार की इति श्री मानने के बजाए पंचाणुव्रत तथा उपर्युल्लिखित नियमों को यदि श्रावकाचार में प्रमुखता दी जाय तो निश्चय ही जैन समाज अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए प्रगति पथ पर अग्रसर होता रहेगा। क्या हमारे धर्म गुरुजनों को श्रावकाचार में उपर्युक्त समीचीन संशोधनों की आवश्यकता पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए- ऐसा मेरा निवेदन है।

- अजित प्रसाद जैन

दहेज

आज के माता पिता अपने युवा बेटों को सरे आम बेच रहे हैं और युवा तरुणाई भी पालतू बिल्ली की भांति बिक रही है। विरोध करने की न तो उनमें इच्छाशक्ति है, न सामर्थ्य। पहले लोग बहू के रूप में लक्ष्मी लाते थे, वहीं आज के युग में लोग बहुरानी लाने लगे हैं। जो कार पर सवार होकर आती है और घर रूप सत्ता की डोर अपने हाथों में ले लेती है। तब यही घर नरक व क्लेश का कारण बन जाता है।

– युवा मुनि श्री तरुणसागर महाराज

स्वास्थ्य के बारे में कुछ बातें

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट

१. यह खोज में आया है कि यदि लगभग ४० वर्ष की आयु तक शुगर अधिक की बीमारी नहीं हुई है तो फिर नहीं होगी। तथापि अपवाद भी हैं।

२. शरीर की हड्डियों में आयु बढ़ने के साथ कमजोरी आ जाती है। प्रायः पैर की हड्डियों में यह परेशानी महसूस होनी शुरू होती है। खड़े रहने की क्षमता कम होने लगती है। इसमें विटामिन डी का उपयोग सदा करते रहने से इसमें लाभ होता है। आजकल सैलकौल टेब मिलती हैं। २५० strength की एक सुबह एक शाम लगातार लें। हमेशा लें।

३. खोज से विटामिन डी के उपयोग के दो भिन्न परिणाम सामने आये हैं। विटमिन डी के लगातार उपयोग से आर्टरीज की सतह सख्त हो जाती है वह नुकसानदेह है और ये भी परिणाम आये हैं कि विटामिन डी के रोज के प्रयोग से हार्ट प्रोबलम कम होती है।

४. रोज सुबह १५ दाने चिरौंजी चबाकर खाने से फेफड़ों को पर्याप्त आक्सीजन मिलती है। दमा रोग में और सांस फूलने के रोग में यह रोज लें।

५. पढ़ने की दृष्टि अगर कमजोर है, चश्मा लगता है तो रोज सुबह ८ दाने सफेद मिर्च, तीन मुनक्का (बीज निकालकर) के साथ चबाकर रस चूसकर खाने से दृष्टि ठहरेगी।

६. लगभग ५५-६० की या अधिक आयु होने पर कमजोरी महसूस हो, कार्यक्षमता घटती लगे तो देशी बादाम ताजा तोड़कर (सुबह रात को) केवल एक बादाम चबाकर दूध पीयें।

७. बी पी Low हो, कभी हो, एक बादाम ताजा फोड़कर चबाकर खायें। ५ मिनट में आराम होगा।

८. प्रातः घूमने से भोजन में ली चर्बी खून में नहीं मिल पाती है जिससे हार्ट प्रॉबलम नहीं होती है।

९. घूमना संभव न हो तो पूर्व की तरफ मुँह करके खुले में जोर-जोर से सांस लें और निकालें १५ मिनट तक। धीरे-धीरे आदत डालें। यह लगभग ६ कि.मी. या ४५ मिनट तेज घूमने के बराबर है। गहरी सांस चाहे बैठकर चाहे खड़े होकर।

१०. आजकल बाईपास सर्जरी आउटडेटेड मानी जा रही है। एंजीओ प्लास्टी ही उपयुक्त है। जरा सी परेशानी महसूस होने लगे तो चैकअप करायें। यदि कुछ ही ब्लाकेज है तो यह होमियोपैथिक उपचार से बिलकुल साफ हो जाएगा। अपने अच्छे अनुभवी डाक्टर से इलाज लें या मुझे लिखें। मिलें तो अधिक उपयुक्त है।

११. ५० की आयु होने पर सुबह १० बूंद आर्निका क्यू एक घूंट कुनकुने जल में सुबह सुबह बगैर कुछ खाए पिए रोज लिया करें, कभी ब्लोकेज नहीं होगा।

१२. पैरों की, एड़ी की, उंगलियों की, गर्दन की, या कहीं और जगह की हड्डी बढ़ जाये, हड्डी में गांठ पड़ जाये तो **HEKLA LAVA 3 X** एक्स २ गोली सुबह, २ दोपहर, २ शाम को लें। रोज, तब तक जब तक पूरा आराम न हो जाये। ध्यान रखें इसमें समय लगता है। कभी कभी एक साल भी। लेकिन लाभ निश्चित है।

– शैलेन्द्र भवन, खुरजा (उ.प्र.), फोन– ४१३२६

सामयिक परिदृश्य–

क्षणिकाएं

आस्था के आगे हर युक्ति बौनी नज़र आती है
आस्था के विपरीत कोई भी बात नहीं सुहाती है
सत्य–तथ्य चाहे कुछ भी रहे हों, हमें तो
अपनी आस्था ही बस सबसे बड़ी नज़र आती है।।

❑ ❑ ❑ ❑

आचरण के चरण ऐसे हो गये
मूल्यों के क्षरण जैसे हो गये
वरण करें बताओ अब हम किनका,
जो थे शरण, अशरण हो गये।।

– रमाकान्त जैन

कुम्मापुत्तचरिअम्

- श्री रमाकान्त जैन

गृहस्थ होते हुए केवलज्ञान प्राप्त करने वाले कुम्मापुत्त (कूर्मापुत्र), जो निर्मल भावों के कारण तत्त्व (सत्य) को अवगत करने वाले और अगर्हित चारित्र वाले थे, की कथा कहने वाली कृति 'कुम्मापुत्तचारिअम्' है। प्राचीन ऋषियों की कथा बहुत संक्षेप में मात्र एक-दो छन्द में प्रत्येक की प्रमुख विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए, कहने वाले धर्मघोष सूरि के ११२५ ई. में रचित ऋषिमण्डल स्तोत्र की गाथा १२५ में कुम्मापुत्त का उल्लेख निम्नवत है -

दोरयणिपमाणतणू जघण्णओगाहणाइ जो सिद्धो।
तमहं तिगुत्तिगुत्तं कुम्मापुत्तं णमंसामि।।

(भावार्थ- मैं उन कूर्मापुत्र को नमस्कार करता हूँ जिनका शरीर दो हाथ प्रमाण था और जिन्होंने जघन्य अवगाहना, दो हाथ प्रमाण शरीर, से तीन गुप्तियों से गुप्त होकर सिद्धि प्राप्त की थी।)

ऋषिमण्डल पर शुभवर्धनगणि ने संस्कृत-टीका रची थी और उसके द्वितीय खण्ड में उपर्युक्त गाथा उद्धृत करते हुए ८२ श्लोकों में 'कूर्मापुत्रर्षिकथानकम्' का वर्णन किया था। उस कथानक के आधार पर १६वीं शती ईस्वी के प्रारम्भ में तपागच्छ के ५५वें पट्टाचार्य श्री हेम विमल (१४६२-१५१२ ई.) के शिष्य जिनमाणिंक्य अथवा उनके शिष्य अनन्तहंस, जिन्हें संस्कृत में १५१३ ई. में दृष्टान्तरत्नाकर और गुजराती में वारव्रत सत्र्झाय तथा इलाप्राकारचैत्यपरिपाटी की रचना का श्रेय है, द्वारा विवेच्य कृति रची गई। व्याकरणिक दोष रहित सरल, सरस और मुहावरेदार महाराष्ट्री प्राकृत में मुख्यतया पद्य में ग्रंथित इस १६८ छन्दीय चरित ग्रंथ में छन्द ७-८ और ३६-३७ के मध्य गद्य का प्रयोग हुआ है जो सूत्र-साहित्य से उद्धृत तथा अर्ध-मागधी प्राकृत भाषा में हुआ बताया जाता है। यत्र-तत्र कथन की पुष्टि में संस्कृत के सुभाषित श्लोक भी अनुस्यूत किये गये हैं। दशवैकालिक, उपदेशमाला और अन्य आगम ग्रन्थों से नामोल्लेख सहित उद्धरण भी दिये गये हैं।

शेष पृष्ठ ८६ पर....

साहित्य सत्कार

(१) **बूंद-बूंद सागर :** प्रवक्ता श्री मणिभद्र मुनि 'सरल'; सम्पादक- विनोद शर्मा; प्रकाशक-मानव मिलन प्रकाशन, हैदराबाद; प्र.वर्ष-२००१; पृ.-१४४; मूल्य-रु. ५०/-

समीक्ष्य कृति में युवा मुनिवर श्री मणिभद्र के १५ सारगर्भित प्रवचनों का संकलन प्रस्तुत है। मुनिश्री एक गंभीर चिंतक हैं, उनकी प्रवचन शैली सुबोध सरल एवं हृदयग्राही है। इसमें संकलित छोटे-छोटे प्रवचन भले ही बूंद के समान हों, पर उनमें विराट सागर की सूचना है। उदाहरणार्थ, स्वर्ग-नर्क के यथार्थ का विवेचन करते हुए मुनिश्री कहते हैं "कि ग्रंथों में जिस स्वर्ग और नरक की सूचनाएं दी गई हैं, वह स्वर्ग और नरक सच हो कि झूठ हो, पर मनुष्य के अपने ही भीतर रहे हुए स्वर्ग और नरक पूर्ण सच हैं। मनुष्य जब क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, हिंसा और अत्याचार के भावों में आता है, उस क्षण वह नरक में होता है। जब वह प्रेम, करुणा, शांति और वात्सल्य से पूर्ण होता है, उस क्षण वह स्वर्ग में होता है।...श्रेष्ठतम से श्रेष्ठतम आप स्वयं हैं। निम्नतम से निम्नतम भी आप स्वयं हैं।" संकलन चिन्तनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

(२) **उद्‌बोधन** : ले. डा. रमेशचंद जैन डी. लिट्‌ (बिजनौर); प्रकाशक- अ. भा. दि. जैन विद्वत्‌ परिषद; प्र. वर्ष-२००२; पृ. ७६; मूल्य- रु. २१/-

समीक्ष्य पुस्तिका में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्‌ परिषद के दि. २३. ६.१९९९ को सांगानेर (राज.) में सम्पन्न हुए १९वें अधिवेशन (स्वर्ण जयन्ती समारोह सहित) में सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में दि. २३.२.२००१ को सम्पन्न हुए २०वें अधिवेशन में तथा अतिशय क्षेत्र बड़ा गांव में १६ जून, २००२ को सम्पन्न हुए २१वें महाधिवेशन में डॉ. रमेशचंद जी द्वारा दिए गए अध्यक्षीय भाषणों का संकलन (डॉ. साहब की साहित्य सेवा आदि के परिचय सहित) प्रस्तुत किया गया है। इन भाषणों में डाक्टर साहब ने बीसवीं शती में दिगम्बर जैन समाज की स्थिति एवं प्रगति, पंडित परम्परा का विकास एवं वर्तमान स्थिति, अपभ्रंश साहित्य का हिंदी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान, २१वीं शती के प्रारंभ में दिगम्बर जैन मुनियों की लुप्तप्रायः परम्परा का पुनः उदय तथा जैन वाङ्मय में उनके विशिष्ट अवदान आदि का विहंगम शब्दचित्र प्रस्तुत किया है जो सराहनीय है। दि. जैन समाज के सर्वोच्च नेता के रूप में पिछली सदी में साधिक ४० वर्षों तक छाए रहने वाले श्रावक शिरोमणि साहू शांति प्रसाद जी का

नामोल्लेख भी इन भाषणों में न किया जाना कुछ खटकता है। कुण्डलपुर क्षेत्र बड़े बाबा (भगवान ऋषभदेव) की सातिशय मूर्ति के कारण अतिशय क्षेत्र के रूप में विख्यात है। यद्यपि डाक्टर साहब ने इस क्षेत्र पर ११४२ ई. से घटी प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डाला है तथापि उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि कौन केवली भगवान ने इस क्षेत्र से मोक्ष गमन किया तथा निर्वाण काण्ड में वर्णित निर्वाण भूमियों में से किससे इस क्षेत्र को चिन्हित किया गया है।

(३) पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण सामायिक विधि : सम्पादक व संकलक- आर्यिका श्री विशुद्धमती जी।

जो आज्ञा-प्रधानी श्रावक धर्म, देव, शास्त्र, गुरु तथा अहिंसादि के परिपालनार्थ सजग रहता है, वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है। नैष्ठिक (व्रती) श्रावक कषायादि के कारण व प्रमादवश अपने व्रतों में लगे दोषों के परिमार्जनार्थ प्रतिक्रमण करता है। उसी प्रकार पाक्षिक श्रावकों को भी अपने दोषों की शुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करना वांछनीय है। समीक्ष्य पुस्तक में पूज्य आचार्य वर्द्धमानसागर म. की संघस्थ आर्यिका श्री विशुद्धमती जी ने सर्वजन हितार्थ पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण व सामायिक पाठ के अतिरिक्त कल्याणलोचना, समाधिमरण, बारह भावना, वैराग्य भावना आदि का सम्पादित संकलन प्रस्तुत किया है। इस संकलन का नित्य पाठ, स्वाध्याय-चिन्तवन सभी सामान्य श्रावकजनों को करना चाहिए।

(४) सूक्ति संग्रह : सम्पादक व अनुवादक- ब्र. यशपाल जैन; प्रकाशक- पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर जयपुर-३०२०१५; प्र. वर्ष-२००२; पृ. ७४; मूल्य- रु. ४/-

आचार्य वादीभसिंह कृत **क्षत्र चूड़ामणि** ग्रन्थ में जहां श्लोक की एक पंक्ति में जीवन्धर कुमार का सरस कथानक चलता है तो दूसरी पंक्ति में नीति का वर्णन। ब्र. यशपाल जी ने इस ग्रंथ की नीतिपरक ३७३ सूक्तियों का संकलन समीक्ष्य पुस्तिका में अकारादि क्रम में प्रस्तुत किया है तथा प्रत्येक सूक्ति के अन्त में लम्ब (अध्याय) व श्लोक क्रमांक भी दिया है। लम्ब के क्रमानुसार दिए गए सुभाषितों के प्रकरण में प्रत्येक श्लोक के प्रारंभ में उसकी विषय वस्तु को स्पष्ट करने वाले प्रसंग-वाक्य अपनी तरफ से जोड़े गए हैं। छात्रों के लिए तो सूक्तियों एवं सुभाषितों का यह संकलन विशेष उपयोगी है ही, सामान्य जन भी इससे लाभान्वित होंगे।

(५) **पंच परमेष्ठी** : सम्पादक व अनुवादक- ब्र. यशपाल जैन; प्रकाशक - पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर; वर्ष २००२ पृ. ६४; मूल्य रु. ४/-

समीक्ष्य कृति की विषय वस्तु पं. टोडरमल जी के सहयोगी ब्र. रायमल्ल जी कृत **ज्ञानानन्द श्रावकाचार** से संकलित की गई है। जिन शासन में अरिहन्त-सिद्ध-साधु का सर्वोपरि स्थान है तथा इस कृति में उनके स्वरूप का सारगर्भित, हृदयग्राही वर्णन किया गया है। पुस्तक संग्रहणीय है।

(६) **कल्पान्तर्वाच्य** : नगर्षि गणि विरचित; स.-आचार्य श्री विजय प्रद्युम्न सूरि, प्रकाशक- शारदा बेन चिमनभाई एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर, दर्शन, शाहीबाग, अहमदाबाद-३८०००४; प्र. वर्ष-१९९७; पृ. १२०; मूल्य-रु. ५०/-

कल्प सूत्र, जिसे श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी विरचित कहा जाता है, को श्वेताम्बर जैन आम्नाय में अंग सूत्रों के समान ही मान्यता प्राप्त है तथा उसे बारहवां (बारसा) सूत्र भी कहा जाता है। पर्यूषण पर्व में इसका व्यापक रूप से पारायण-वाचन किया जाता है। **कल्पसूत्र** में वर्णित विविध प्रसंगों के प्रकाशनार्थ प्राचीन आचार्यों द्वारा एकाधिक चूर्णियां रची गई हैं। पंडित प्रवर नगर्षि गणि जी द्वारा वि.सं. १६५७ में विरचित प्रस्तुत कृति में भी सरल प्राकृत भाषा में **कल्पसूत्र** में आए कतिपय प्रसंगों व कथाओं का विस्तार से अर्थ प्रकाश किया गया है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित था।

(७) **लक्ष्मणपुर की आत्मकथा** : ले.- योगेश प्रवीन; प्रकाशक-नमन प्रकाशन, पंचवटी ८६, गौसनगर, लखनऊ-१८; प्र. वर्ष-२०००; पृ. १४३; मूल्य रु. १००

विद्वान लेखक के अनुसार लखनऊ नगर अपने आप में ललित कलाओं, ऐतिहासिक दस्तावेजों और कलात्मक धरोहरों का अनुपम संग्रहालय है तथा इसे ई. पू. ३००० वर्ष तक की पुरातात्विक सम्पदा लक्ष्मण टीला तथा हुलास खेडा के रूप में प्राप्त है। प्रस्तुत कृति में लखनऊ के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्मारकों, मंदिरों, मस्जिदों आदि का परिचय उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत किया गया है, जो पर्यटकों की दृष्टि से अभी तक उपेक्षित रही है।

(८) **भक्ति गीत संग्रह सुमनहार** : लेखक, प्रकाशक-वही; प्र. वर्ष-१९९५, पृ.२२५; मूल्य- रु. १००/-

श्री योगेश प्रवीन जी ने न केवल लखनऊ के प्राचीन स्मारकों, भवनों, मंदिरों, मस्जिदों के इतिहास को उजागर कर उन्हें अमर किया है, वरन वे एक सिद्ध कवि भी हैं। २२५ भक्ति गीतों के प्रस्तुत संग्रह में प्रवीन जी ने हिन्दू संस्कृति में समाहित सभी

अवतारों, देवी-देवताओं सहित गुरु नानक, भगवान बुद्ध तथा भगवान महावीर को भी अपने भक्ति सुमन अर्पित किए हैं। महावीर वंदना में वे कहते हैं-

अब सकल अविद्या दूर करो हे स्वामी
दो मुक्तिदान तीर्थंकर अन्तर्यामी
नवकार मंत्र का दिशा-दिशा हो गुंजन
स्वीकार करो, ये पूजा, ये अभिनन्दन।।

सभी गीत कोमलकान्त पदावली में रचे गए हैं तथा गेय हैं।

श्री योगेश प्रवीन जी की उल्लेखनीय साहित्यिक उपलब्धियों के लिए चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ द्वारा उन्हें हाल ही में डी. लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है। इस सम्मान के लिए हम भी प्रवीन जी का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

(९) जैन पर्व : ले.- डॉ. रमेशचंद जैन, डी. लिट्.; प्रकाशक-अ. भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद; प्र. वर्ष-२००१ ; पृ.११८; मूल्य- रु. ३०/-

जैन समाज द्वारा मनाए जाने वाले धार्मिक पर्वों में जैन संस्कृति का सम्पोषण देखने को मिलता है। आत्मशुद्धि इनका ध्येय है, नैतिकता के ये प्रतीक हैं और जैनाचार को ये दर्शाते हैं। समीक्ष्य कृति में महावीर जयंती, ऋषभ जयंती, दीपावली, रक्षाबंधन, श्रुतपंचमी, दशलक्षण, अष्टान्हिका आदि १४ पर्वों का, उनसे जुड़ी धर्म कथा, इतिहास, मनाने की विधि आदि का कथन किया गया है। इस कृति में दशलक्षण पर्व का ही दूसरा नाम पर्यूषण पर्व बताया गया है जो हमें कुछ उचित नहीं लगता। पर्यूषण पर्व श्वेताम्बर आम्नाय द्वारा मनाया जाने वाला ८ दिन का पर्व है जिसकी समाप्ति के दिन भाद्रपद शुक्ल पंचमी से दिगम्बर जैन आम्नाय का दस दिन का दशलक्षण पर्व मनाया जाता है। प्राचीन दिगम्बर जैन साहित्य में कहीं भी इसका पर्यूषण पर्व के नाम से उल्लेख नहीं मिलता। दीपावली पर चढ़ाए जाने वाले निर्वाण लाडू को अर्द्ध चन्द्राकार सिद्ध शिला का प्रतीक बताया गया है, किन्तु यदि ऐसा होता तो पूर्ण लाडू के बजाए अर्द्ध लाडू चढ़ाया जाता।

लेखक जैन जगत के शीर्ष विद्वानों में हैं तथा प्रकाशक संस्था अ. भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष हैं। पुस्तक बहुत उपयोगी तथा प्रत्येक दि. जैन परिवार में रखे जाने योग्य है।

(१०) क्या क्षेत्रपाल पदमावती आदि शासन देवता पूजनीय हैं : ले.- श्री रतनलाल बैनाड़ा; प्राप्ति स्थान श्री उत्तम कुमार पांड्या, न्यू मेडिसिन चैम्बर, फिल्म कालोनी, जयपुर- राज; पृष्ठ-२३

प्रश्नोत्तर शैली में इस लघु पुस्तिका में शास्त्र मर्मज्ञ सुश्रावक श्री रतनलाल जी बैनाड़ा ने प्रथमानुयोग के शास्त्रों के प्रमाण से यह सिद्ध किया है कि क्षेत्रपाल पद्मावती आदि शासन देवता व्यन्तर जाति के देव हैं जो देवगति का निम्नतम वर्ग है। वे अन्य देवों की तरह असंयमी तो हैं ही, जन्मतः सम्यग्दृष्टि भी नहीं होते। जब तक असाता वेदनीय का तीव्र उदय रहता है कोई भी देव या देवी आराधक के कष्टों को दूर करने में समर्थ नहीं है। **यशस्तिलक चम्पू** में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो श्रावक तीनों लोकों के दृष्टा जिनेन्द्र भगवान की और व्यन्तर देवताओं की पूजा विधि समान मानता है, वह नरकगामी है। श्री कुन्दकुन्द देव ने **मोक्ष पाहुड़** में इन्हें खोटे देव और इनकी उपासना करने वालों को मिथ्या दृष्टि कहा है।

पुस्तिका हर धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविका के चिन्तन-मनन करने योग्य है।

(११) सम्यग्ज्ञान परीक्षाः जड़ पूजा या गुण पूजा- लेखक व प्राप्ति स्थान- श्री दिनेश कुमार जैन, ८ वीर नगर, मेरठ-२५०००२; पृष्ठ-१०४

समीक्ष्य पुस्तक में प्रश्नोत्तर शैली में जैन धर्म सम्बंधी स्थानकवासी आम्नाय की कतिपय मान्यताओं का १६ अध्यायों में निरूपण किया गया है तथा बताया गया है कि जैन धर्म में मूर्तिपूजा कल्पित है, जड़ तीर्थ (सम्मेदशिखर, शत्रुंजय आदि) का कोई महत्व नहीं है तथा धर्म तीर्थ केवल साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका हैं, भगवान महावीर के समय में जड़ तीर्थ, जिन मंदिर और मूर्तियां नहीं थीं, आदि आदि। पुस्तक के अन्तिम अध्याय में छह भजन दिए गए हैं जिनमें जैन संत आचार और पाप श्रमण की ढाल उल्लेखनीय है।

(१२) समाधि संजीवनीः सं. व प्रकाशक- प्रा. सौ. लीलावती जैन, ५ दिशांत अपार्ट. दीपा हौ. सोसा. संघवी नगर, डी. पी. रोड, औंध, पुणे-४११००७; पृ.५६; मूल्य रु. ७/-

धर्म मंगल (मासिक) की विदुषी संपादिका जी ने भगवान महावीर २६००वां जन्म जयंती वर्ष के सुअवसर पर पत्रिका के २ अप्रैल, २००२ के विशेषांक के रूप में इस पुस्तिका का प्रकाशन किया है। इसमें गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी समाधि की आराधना कैसे की जाय, इसका मार्गदर्शन किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक सुश्रावक के लिए चिन्तन मनन योग्य है ताकि वह अंत समय में सल्लेखना पूर्वक (मोह व क्रोधादि कषायों को कृश करके) समाधिमरण कर सके।

(१३) जैन जाति नहीं धर्म है: ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; प्रकाशक- अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद; १२६, जादोन नगर बी. स्टेशनं रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-३०२०१८; प्र. वर्ष-२००१; पृष्ठ-१६; मूल्य-२/-

जैनेतर समाज में अनेकों को यह भ्रान्ति है कि जैन धर्म कोई जाति विशेष है। इस भ्रांति का निराकरण करते हुए विद्वान लेखक ने बताया है कि जैन धर्म तो प्राणिमात्र का धर्म है और प्राचीन काल में ही नहीं वर्तमान में भी अनेकों ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वैष्णव धर्म छोड़कर जैन धर्म स्वीकार करते रहे हैं। लेखक महोदय ने डॉ. अम्बेदकर का भी उल्लेख किया है जो अपने लाखों साथियों के साथ बौद्ध धर्म अपनाने के पूर्व जैन धर्म अपनाना चाहते थे किन्तु जैन समाज के अनुदार दृष्टिकोण के कारण वह संभव न हो सका। पर हमारी समझ में तो जैन समाज ने कोई गलती नहीं की थी। डॉ. अम्बेदकर व उनके साथी जाति-छुआछूत निरपेक्ष जैन धर्म को विशुद्ध राजनीतिक-सामाजिक लाभ के लिए अपनाना चाहते थे न कि उसके दर्शन व अहिंसामय जीवन शैली व आचार से प्रभावित होकर। महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का उपदेश दिया था पर आज प्रायः सभी बौद्ध धर्मावलंबी मांसाहारी हैं। यदि डॉ. अम्बेदकर व उनके साथी जैन धर्म अपना लेते तो जैन समाज में भी मांसहारियों का ही बोलबाला हो जाता। वे मांसाहार की अपनी आदत तो छोड़ते नहीं, शेष जैनियों में भी अपने सम्पर्क से मांसाहार की प्रवृत्ति का प्रवेश करा देते। इस पुस्तिका के बहुभाग में आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की ही चर्चा की गई है, जिसका इस विषय से कोई संबंध नहीं प्रतीत होता।

(१४) जीवन क्या है?: ले.- डॉ. अनिल कुमार जैन; प्रकाशक-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, ५८४ महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इंदौर- ४५२००१; प्र. वर्ष-२००२; पृ.१०२; मूल्य- रु. ५०/-

भौतिकी वैज्ञानिक विद्वान लेखक ने जीवन के रहस्यों संबंधी जैन दर्शन के सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की विज्ञान की अद्यतन शोध खोजों के परिप्रेक्ष्य में समन्वयात्मक अध्ययन करने का स्तुत्य प्रयास किया है जिससे उनकी शाश्वत सत्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार के अध्ययन और वैज्ञानिकों द्वारा किए जाने भी अपेक्षित हैं।

समीक्ष्य कृति में विद्वान लेखक के जीवन रहस्यों से संबंधित १६ शोधपूर्ण रोचक लेखों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। एक लेख में मनुष्य द्वारा

क्लोनिंग की अप्राकृतिक विधि द्वारा एक सी शक्ल-सूरत वाले जीवों के पैदा किए जाने में कर्म सिद्धान्त से कोई विसंगति न होना प्रतिपादित किया गया है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्लोनिंग में कोई आत्मा कैसे प्रविष्ट हो जाती है।

पुस्तक रोचक है, संग्रहणीय है। जरूरत है कि और वैज्ञानिक भी इस प्रकार का शोध कार्य करें।

(१५) कुण्डलपुर के राजकुमार जननायक तीर्थंकर महावीर : संकलन एवं संयोजन- डॉ. रमा जैन; प्रकाशक- तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ; प्राप्ति सम्पर्क- डॉ. अनुपम जैन, ज्ञान छाया, डी-१४, सुदामा नगर, इन्दौर-४५२००९; प्र. वर्ष- २००२; पृ.१०८; मूल्य रु. १५/-

जैन धर्म ने सभी भारतीय धर्मों को काफी प्रभावित किया है तथापि प्रचार-प्रसार के अभाव में भगवान महावीर और जैन धर्म के विषय में जनता को समुचित जानकारी नहीं है। धर्म प्रचार के उद्देश्य एवं जन जन तक भगवान महावीर की देशना को पहुंचाने की भावना से प्रेरित होकर विदुषी सम्पादिका जी ने समीक्ष्य कृति में जैन धर्म और भगवान महावीर के संबंध में ४४ श्रेष्ठ लेखों व कविताओं का संकलन महावीर स्वामी के सिद्धान्तों पर देश-विदेश के जैन-जैनेतर विद्वानों की सम्मतियों सहित प्रस्तुत किया है।

पुरोवाक् में सम्पादिका जी ने विश्वास प्रकट किया है कि इन दिनों भगवान महावीर की जन्म भूमि बिहार प्रान्त के नालन्दा जिले में स्थित कुण्डलपुर के बारे में जो अनावश्यक विवाद पैदा किया जा रहा है, विद्वत् जन एवं जन मानस इस पुस्तक में संकलित लेखों से वास्तविकता से परिचित होकर कुण्डलपुर के विकास, प्रचार-प्रसार के लिए उद्यत होंगे। विदूषी सम्पादिका जी की सोच एकांगी है। यदि पुस्तक में ऐसे लेखों को भी स्थान दिया गया होता जिनमें नालन्दा जिले के कुण्डलपुर को भगवान की जन्मभूमि न मानने के संबंध में सशक्त आगमोक्त ठोस प्रमाण दिए गए हैं तो पुस्तक इस हेतु सचमुच ही उपयोगी सिद्ध होती।

(१६) गुरु- परम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम- एक इतिहास : व्याख्यानकर्ता- डॉ. एम. डी. वसन्तराज; प्रकाशक-डा. अशोक जैन, मंत्री श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी-२२१००५; प्र. वर्ष-२००१; पृ.६६; मूल्य रु. ४०/-

समीक्ष्य कृति में जैन जगत के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विद्वान प्रो. (डॉ.) एम. डी. वसन्तराज द्वारा २-३ सितम्बर १९९९ को श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान वाराणसी में दिए गए व्याख्यानों को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया गया है। वस्तु विषय दो

अध्यायों में विभक्त है- (१) गुरु परंपरा से प्राप्त आगम तथा (२) दिगम्बर आम्नाय का आगम। भगवान पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म को विद्वान लेखक ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-संयम-तप से चार यम वाला धर्म बताया है न कि चार व्रतों (अहिंसा-सत्य-अचौर्य-अपरिग्रह) वाला जैसी कि आम धारणा है। विषय वस्तु की व्याख्या, प्रतिपादन शोध-खोजपरक है। पुस्तक संग्रहणीय है।

(१७) शौरसेनी प्राकृत भाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : ले.- प्रो. (डॉ.) राजाराम; प्रकाशक-कुन्दकुन्द भारती (न्यास), १८-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-६७; प्र. वर्ष-२००१; पृ.१८८

विद्वान लेखक का निष्कर्ष है कि शौरसेनी प्राकृत प्राचीनतम प्राकृत रही है। अर्धमागधी प्राकृत के विषय में उनका मानना है कि तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि का जब ग्रंथन किया गया तो उसमें उस समय की सर्वत्र प्रचलित बोलियों की भाषाओं का मिश्रण था। चूंकि मगध देश में उनकी दिव्य ध्वनि का ग्रंथन हुआ अतः इस विमिश्रित भाषा का नाम अर्धमागधी पड़ा। वह वर्तमान की अर्धमागधी नहीं थी जिसका अस्तित्व ही पांचवी सदी के पूर्व नहीं मिलता।

समीक्ष्य ग्रंथ ११ अध्यायों में विभक्त है जिनमें प्राकृत भाषा के उद्गम, प्राकृत साहित्य के उद्भव और विकास तथा प्राकृत के ग्रंथों एवं ग्रंथकारों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है, ऐतिहासिक साहित्य के अन्तर्गत अशोक के शिलालेखों, हाथी गुम्फा, नासिक तथा कक्कुड के शिलालेखों का उल्लेख किया गया है तथा ग्रन्थ प्रशस्तियों में महाकवि विबुध श्रीधर तथा रइधु के साहित्य में उपलब्ध प्रशस्तियों का उल्लेख किया गया है, यद्यपि इन दोनों महाकवियों का साहित्य अपभ्रंश भाषा का है। कदाचित् डाक्टर साहब अपभ्रंश को शौरसेनी प्राकृत का ही एक रूप मानते हैं।

यह ग्रंथ प्राकृत भाषा एवं इतिहास के अध्येताओं के लिए महत्वपूर्ण है तथा संग्रहणीय है।

- अजित प्रसाद जैन

(18) Facets of Jainology : by Vilas Adinath Sangave; pub. Popular Prakashan Pvt. Ltd., 35-C, Pt. Madan Mohan Malaviya Marg, Popular Press Bldg., Tardeo, Mumbai- 400034; first pub. 2001; pp. 242; Price - Rs. 275/-

Facets of Jainology is a Compilation of 30 research papers published in 1975-94, of Dr. Vilas Adinath Sangave, retired

Professor and Head of Department of Sociology, Shivaji University, Kolhapur. The papers are classified into three sections, respectively Jain Society, Jain Religion and Jain Culture.

The section on jain Society Contains twelve papers which deal with the sociological aspect. His observations on the existence of a jain Law, as also as regards the position of widow and of the caste system among the Jains, insight curiosity.

Nine papers are contained in the section on Jain Religion and nine papers are also contained in the section of Jain cutture. The chapter on the Bhattaraka tradition gives interesting information.

The publication of this collection of papers of Dr. Sangave is a welcome addition to Jainology.

-Dr. Shashi Kant

(१६) **प्रमाण निर्णय :** रचनाकार आचार्य वादिराज; अनुवाद- सम्पादन- डॉ. सूरजमुखी जैन मुजफ्फरनगर; प्र.-अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)-४७०११३; प्र. वर्ष - २००१; पृ. १००+५।

प्रमाण निर्णय तर्क एवं न्याय जैसे गूढ़ विषय का प्रतिपादन करने वाला संस्कत भाषा में निबद्ध ग्रन्थ है। प्रमाण निर्णय, प्रत्यक्ष निर्णय, परोक्ष निर्णय और आगम निर्णय इन चार प्रकरणों द्वारा इसमें जैन दर्शन का सार प्रस्तुत किया गया है। इस गूढ़ विषय को मुमुक्षु हिन्दी पाठकों के लिये सुबोध करने हेतु इसका अनुवाद-सम्पादन विदुषी डॉ. सूरजमुखी जैन ने किया है। इस ग्रन्थ के प्रणेता नंदीसंघ की अरुङ्गल शाखा के आचार्य वादिराज हैं जो ११वीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण चालुक्य नरेश जयसिंह प्रथम (१०१६-१०४२ ई.) के राज्यकाल में हुए थे। षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वाद विद्यापति, जगदेकमल्लवादी उपाधियों से विभूषित इन वादिराज को **पार्श्वनाथ चरित** और **यशोधरचरित** नामक संस्कृत काव्य, **एकीभाव स्तोत्र** तथा **न्यायविनिश्चय विवरण** नामक कृतियों के प्रणयन का श्रेय है। इसके सुरुचिपूर्ण प्रकाशन हेतु प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं। **- रमाकान्त जैन**

(२०) **युग- युग में जैन धर्म :** लेखक- इतिहास मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन; प्र. प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए प्रेमपुरी, निकट जैन मंदिर, मुजफ्फरनगर-२५१००१; प्र. सं.-२००२; पृ.-८६, मूल्य-रु. ५०/-

युग-युग में जैन धर्म कृति पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से केकड़ी, अजमेर (राज.) में 'भगवान महावीर के २६०० वर्ष' विषय पर आयोजित

कार्यशाला के उपलक्ष में कार्यशाला संयोजक डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ के सद्प्रयास एवं सक्रिय सहयोग से प्राच्य श्रमण भारती द्वारा प्रकाशित हुई। भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, साहित्य और जैन विद्या के बीसवीं शती ईस्वी के मर्मज्ञ विद्वान इतिहास- मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने इस कृति का प्रणयन १९७८ ई. में किया था। उनके कनिष्ठ पुत्र रमाकान्त ने डाक्टर साहब की पाण्डुलिपि से सामग्री का संचयन और सम्पादन कर प्रस्तुत रूप में पुस्तक को व्यवस्थित किया और इसका प्राक्कथन उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. शशिकान्त ने लिखा है।

समीक्ष्य कृति में भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों- सुदूर प्राग्ऐतिहासिक युग से आधुनिक युग पर्यन्त-में जैन धर्म और संस्कृति का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण छह अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में जैन धर्म और दर्शन के मूलाधारों का परिचयात्मक विवेचन है। द्वितीय में अनुश्रुतिगम्य इतिहास के अन्तर्गत सुदीर्घ प्राग्ऐतिहासिक काल से महाभारत पर्यन्त मानवीय सभ्यता के विकास का परिचय है। तृतीय में महाभारतोत्तर काल लगभग १४०० वर्ष ईसा पूर्व से आधुनिक युग में सन् १९५० ई. तक जैन धर्म और संस्कृति के विकास क्रम का परिचय है और यह भगवान महावीर के जन्म (ईसा पूर्व ५९९) से २६०० वर्ष के इतिहास को मुख्यतया समाहित करता है। चतुर्थ में जैन इतिहास के साधन स्रोतों का उल्लेख है। पंचम में जैन कला का परिचयात्मक सर्वेक्षण है और छठे अध्याय में जैन धर्म और संस्कृति के भारतीय संस्कृति को योगदान का सारांशतः परिचय है। अन्त में विशेष जिज्ञासुओं के उपयोगार्थ सहायक ग्रन्थ सूची के अन्तर्गत डाक्टर साहब की इतिहास विषयक कृतियों तथा अन्य आवश्यक संदर्भ ग्रन्थों का उल्लेख है। यह सर्वेक्षण विशेष अध्येताओं द्वारा अखिल भारतीय इतिहास में जैन धर्म और उसकी संस्कृति का सम्यक् मूल्यांकन किये जाने में तो सहायक है ही, सरल-सुबोध भाषा में प्रणीत होने के कारण सामान्य पाठकों के लिये भी उपयोगी है। आवरण पृष्ठ पर लगभग १५वीं शती ई. में निर्मित भगवान आदिनाथ को समर्पित चित्तौड़ स्थित कलात्मक सात-बीस ड्योढ़ी मंदिर के रंगीन चित्र ने कृति को चारुता प्रदान की है।

५/७७९, विराम खण्ड
गोमतीनगर, लखनऊ - २२६ ०१०

- डॉ. (श्रीमती) राका जैन

समाचार विमर्श

– श्री अजित प्रसाद जैन

वर्द्धमान बुद्धिजीवी फोरम –

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर म. की प्रेरणा से तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत्त वरिष्ठ अधिकारी श्री शान्ति प्रकाश जैन की अध्यक्षता में पल्लवपुरम, मेरठ में वर्द्धमान बुद्धिजीवी फोरम की स्थापना की गई है। फोरम का उद्देश्य समस्त जैन समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को एक मंच पर संगठित कर उनमें सामाजिक दायित्वों के प्रति कर्तव्यबोध जागृत करने तथा सेवानिवृत्त वरिष्ठ अनुभवी बन्धुओं का मार्गदर्शन विविध सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु उपलब्ध कराना है।

हम इस फोरम की स्थापना की उदात्त अवधारणा का अभिनंदन करते हैं। बुद्धिजीवियों के ऐसे फोरम सामाजिक आचरण को समुन्नत करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

गुजरात का नरसंहार –

गुजरात में मुस्लिम बहुल क्षेत्र के गोधरा स्टेशन पर आकर रुकी साबरमती एक्सप्रेस की एक बोगी में जो अयोध्या की यात्रा कर लौट रहे तीर्थयात्रियों-स्त्रियों, बच्चों, पुरुषों से खचाखच भरी थी, उसके सभी दरवाजे बंद कर मुस्लिम आतंकवादियों ने पेट्रोल आदि फेंककर पूरी बोगी को जला दिया, जिससे कम से कम ५८ व्यक्तियों को जिन्दा जलाकर मार दिए जाने की तो अधिकारिक तौर से पुष्टि की गई थी और वास्तविक संख्या कहीं अधिक बताई जाती है। २७ फरवरी को की गई इस अकारण निर्मम सामूहिक हत्या की प्रतिक्रिया में भड़की हिंसा प्रतिहिंसा का जो दौर शुरू हुआ उसने सैकड़ों की बलि ले ली तथा हजारों को बेघरबार कर शरणार्थी शिविरों में शरण लेने के लिए मजबूर कर देने के बाद भी छुटपुट हादसों का क्रम थमने का नाम नहीं ले रहा है। अहमदाबाद से प्रकाशित तीर्थंकर वाणी के मई २००२ के अंक में इस नर संहार के प्रत्यक्षदर्शी विद्वान सम्पादक जी लिखते हैं-

'जिस प्रकार इस नृशंस हत्याकांड में गुजरात के गली-मोहल्ले, खेत-खलिहान, दुकान-मकान और सबसे अधिक जिन्दा इन्सान धू-धूकर जलते मरते रहे, उसे देखकर यह नहीं लगता कि यह वही धरती है जहां जीओ और जीने दो जैसे मूलमंत्रों को संस्कारों की घुट्टी में पिलाया जाता था। हैवानियत के इस नग्न नृत्य से गुजरात की धरती एक ऐसे श्मशान में तब्दील होती दिखाई दे रही है जहां एक साथ इतने

मुर्दे जल रहे हैं जिन्हें गिनना आसान नहीं, एक ऐसा कब्रिस्तान बनता नजर आ रहा है जहां अनगिनत कब्रों की खुदाई एक साथ हो रही है।'

सबसे अधिक विडम्बना की बात तो यह है कि यह उस गुजरात में घटित हुआ जो सहस्रों वर्षों से परम अहिंसक एवं शान्ति प्रिय जैन समाज व वैष्णव समाज का गढ़ चला आ रहा है, जहां आज भी बड़ी संख्या में जैन मुनि तथा वैष्णव संत विराजते हैं।

हमने गत वर्ष अहिंसा के मसीहा भगवान महावीर स्वामी का २६००वां जन्म महोत्सव वर्ष बड़े हर्ष उल्लास से मनाया। भारत सरकार ने भी इस वर्ष को 'अहिंसा वर्ष' घोषित कर भगवान महावीर को अपनी विनयांजलि अर्पित की थी। हमारे अनेक महामुनियों और आर्यिका माताओं की प्रेरणा से व उनके सान्निध्य में धर्म प्रभावनार्थ अनेकों अहिंसा शिखर सम्मेलन, अहिंसा गोष्ठियां, विश्व शांति विधान आदि आयोजित किए गए। काश हमारे इन अहिंसा के दूत-विश्वमैत्री का उपदेश देने वाले साधु संतों में से कुछ गुजरात के दंगा ग्रस्त क्षेत्रों में विचरण कर शांति व जीओ और जीने दो का संदेश घर घर पहुंचाते, दंगा पीड़ितों को धैर्य बंधाते और जैन समाज को उनकी और अधिक सेवा सहायता करने की प्रेरणा देते और इस प्रकार महात्मा गांधी के नोआखाली मार्च की याद ताजा करा देते। यदि ऐसा हुआ होता तो जैन धर्म की कितनी भारी प्रभावना हुई होती।

अहिंसा वर्ष समापन के उपहार (?)

ललित जैन की हत्या

भिवंडी (महा.)– भगवान महावीर जन्म कल्याणक के एक दिन पूर्व २४ अप्रैल, २००२ की दोपहर को शहर के कसाइयों ने ३१ वर्षीय सुश्रावक वकील श्री ललित जैन की भरे बाजार गोली मारकर निर्मम हत्या कर दी। श्री जैन का अपराध था कि उन्होंने पिछले ८ वर्षों में २०० से ज्यादा केस लड़कर अवैध रूप से कत्ल के लिए ले जाये जा रहे ५००० पशुओं को बचाया था।

(-स्थूलिभद्र संदेश मई २००२)

अहिंसा वर्ष के समापन के अवसर पर अहिंसक समाज को हिंसक कसाई वर्ग का यह उपहार उनकी उसी मानसिकता को उजागर करता है जो हमारे पड़ोसी देश के फौजी शासक की है।

घाटकोपर (मुंबई) – राख और एक सारिका की

"औरंगाबाद के एक सम्पन्न परिवार की लड़की सारिका जैन का घाटकोपर के एक सम्भ्रान्त जैन परिवार में दि. १६ अगस्त, २००१ को औरंगाबाद के एक पंच

तारांकित होटल से बड़ी धूमधाम एवं शान शौकत से विवाह हुआ था। वर पक्ष की ओर से जो जो मांगे की गई सो सो उन्हें दहेज में दिया गया। लेकिन विवाह के कुछ ही महीने बाद सारिका पर जोर डाला जाने लगा तथा उत्पीड़न किया जाने लगा कि वह पीहर वालों से तीन लाख रुपया लाकर दे। पीहर वालों ने इस मांग को पूरा करने में असमर्थता प्रकट की तिस पर लड़की को जलाकर मार डाला गया। जलाए जाने के समय उसके पेट से ८ महीने का बच्चा भी था जो दम घुटकर मर गया। सास-ससुर पति देवर को गिरफ्तार कर लिया गया है तथा दहेज हत्या का मुकदमा चल रहा है।" - (धर्म मंगल)

तो यह है हमारे अहिंसक समाज के अपनों का अपनों को भगवान महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक अहिंसा वर्ष का उपहार।

जैन धर्मानुयायियों को धर्म निष्ठ बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील हमारे साधु संतों, आर्यिका माताओं में से क्या कोई महान् आत्मा दहेज अभिशाप से समाज को मुक्त कराना अपने साधु जीवन का मिशन बनाएंगे।

इस युग में भी–
ताड़पत्रों पर शास्त्र आलेखन

"पूर्व काल में विशेष प्रकार की बनाई गई स्याही से तथा धातु की कलम से अक्षरों को कुरेद कर ग्रंथों का लेखन किया जाता था। भगवान महावीर के निर्वाण के ६०८ वर्ष बाद (४८१ ई. में) श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की प्रेरणा से ऐसा लेखन कार्य हुआ। तत्पश्चात आचार्य श्री हरिभद्रसूरि जी, आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि जी के समय तक शास्त्रों का ताड़पत्रों पर लेखन अविरल चलता रहा। ताड़पत्र यदि समुचित रूप से सुरक्षित रखा जाय तो हजार बारह सौ वर्ष तक टिक सकता है।-- कुछ समय बाद.. कई कारणों से ताड़पत्र की प्राप्ति अवरूद्ध हो गई। फलस्वरूप अल्पजीवी कागज पर ग्रंथ लिखे जाने लगे। काल के प्रवाह में, वातावरण परिवर्तन से, धीरे-धीरे ग्रंथ राशि नष्ट होने लगी। अनेक महत्व के आगम ग्रंथ, प्रकरण ग्रंथ, खगोल-भूगोल, वैद्यक, तंत्र-मंत्र आदि सर्व साहित्य ग्रंथ काल की गर्त में लुप्त हो गए। कई दीमक के भोज बने, कई ग्रंथ व्यवस्थापकों की बेपरवाही से खो गए, सड़ गए और कई लोभियों द्वारा विदेशियों को बेच दिये गये-- इन दिनों तपागच्छाधिपति आ. श्री विजयराम चन्द्र सूरिश्वरजी, गच्छाधिपति आ. श्री महोदय सूरिश्वर जी तथा आ. श्री विजयगुणयश सूरिश्वर जी आदि की प्रेरणा से ताड़पत्रों व लिखने वालों की खोजकर, लेखन-उत्कीर्णन अत्यन्त सतर्कता पूर्वक चालू किया गया है। ग्रंथों को सुरक्षित काष्ट पेटिकाओं में संगृहित किया जा रहा है। इस समय प्रतिदिन ४०००

श्लोक या ४,४०,००० श्लोक बारह महीने में, ताड़पत्र पर लिखे जा रहे हैं हर वर्ष लिखने वालों की संख्या बढ़ाकर अधिक परिणाम में लेखन कार्य किया जा रहा है। श्री गणधर देवों द्वारा रचे गए आगम ग्रंथ तथा अन्य व्यक्तियों के द्वारा आगम ग्रंथ मूल के साथ निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और वृत्ति (टीका) भी लिखे जा रहे हैं। हर ग्रंथ की सर्वप्रथम २७-२७ प्रतियां बनाई जा रही हैं। भारत के २७ राज्यों में सुरक्षित स्थानों पर बनाये जानेवाले ज्ञान भंडारों मं हर ग्रंथ की प्रति स्थापित करने की योजना है।-- इस योजना के अंतर्गत ४५ आगम मूल, ११ अंग मूल, १२ उपांग मूल, १० पयन्ना मूल, ६ छेद सूत्र मूल, ४ सूत्र मूल २ चूलिका सूत्र मूल, १००० श्लोक, व इनकी टीका आदि लिखे जा रहे हैं।-- आगम ग्रंथों का लेखन कार्य पूरा होने के बाद आ. श्री हरिभद्र सूरिश्वर जी आ. श्री हेमचन्द्र सूरिश्वर जी, उपाध्याय श्री यशोविजय जी आदि के ग्रंथों का लेखन कार्य प्रारम्भ होगा।......

(महाशिला- अभिलेख पत्रिका
अक्टूबर २००१ से अप्रैल २००२ का अंक)

इसी समाचार में यह भी प्रकाशित हुआ है कि ताड़पत्र पर लेखन कितना दुष्कर कार्य है। अब जरा उसका भी जायजा लीजिए-

''वर्ष भर ताड़पत्र मिलते नहीं हैं। वर्षाकाल के बाद के तीन महीनों में ही इन्हें एकत्र किया जा सकता है। पूर्व भारतीय समुद्र तट के पट्टे में ही ऐसे ताड़वृक्ष उपलब्ध हैं जिनके पत्र लिखने में काम आ सकते हैं। श्रीलंका के निकट भी ताड़वृक्ष होते हैं, उनकी छाल पर भी ग्रंथ लेखन हो सकता है। वृक्ष से गिरे ताड़पत्रों को एकत्र कर उन्हें एक आकार में काट लेते हैं। तत्पश्चात उन्हें एक विशेष वनस्पति के बक्स में उबालते हैं जिससे तैयार पत्रों को दीमक या अन्य जन्तु हानि नहीं पहुंचा पाते हैं। धातु की ५-१० इंच लम्बी कलम से इनमें अक्षर काटे जाते हैं। ताड़पत्र पर अंकन होने के बाद स्याही, जो विशेष विधि से बनाई गई होती है, लगाई जाती है। सूख जाने के बाद झीना कपड़ा फेर देते हैं। फिर सिर्फ अंकन पर ही रंग रह जाता है, तब पढ़ने में सुगमता रहती है।''

ताड़पत्रों पर ग्रंथ लेखन का युग तो कागज की उपलब्धि के साथ ८००-६०० वर्ष पूर्व समाप्त हो गया। पहिले आया हस्त निर्मित कागज और फिर मिल निर्मित उत्तमोत्तम कागज। फिर आया छापे का युग और परम्परापोषण में ही धर्म की रक्षा मानने वाले समाज के अंग के प्रबल विरोध के बावजूद २०वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में ही ग्रंथों की प्रतिलिपियां बनाने हेतु कागज पर हस्तलेखन धीरे-धीरे समाप्त हो गया और अब तो कम्प्यूटर का, माइक्रो फिल्मिंग का युग आ गया है तथा बहुत थोड़े स्थान

में विपुल साहित्य को चिरकाल तक २७ ही नहीं अनेक स्थानों पर अल्प व्यय में सुरक्षित रखा जा सकता है।

हाँ, यदि कुछ व्यक्तियों को रोजगार देने के लिये यह आसिफुद्दौलायी तरीका अपनाया गया हो तो बात दूसरी है। (अवध के नवाब आसिफुद्दौला के शासन काल में एक बार भयंकर अकाल पड़ा था। तब नवाब साहब ने लखनऊ के ऐतिहासिक बड़े इमामबाड़े का निर्माण कराया था। सम्भ्रान्त निर्धन परिवारों की खुद्दार महिलाएं जो मुफ्त में सहायता लेना पसंद नहीं करती थी, रात्रि के अंधेरे में आकर इस विशाल भवन के निर्माण में कार्य करती थीं और अपनी मजदूरी ले जाती थीं। दिन निकलने पर उनके द्वारा किए गए उलटे-सीधे निर्माण को ढहा दिया जाता था।)

एक और गणधर हुए–

कानपुर में आचार्य श्री सिद्धान्तसागर जी म. ने अपने परम शिष्य मुनि श्री शशांकसागर जी को कानपुर समाज के समक्ष गणधर पद से विभूषित किया।

जैन तीर्थंकरों के प्रमुख शिष्य गणधर कहलाते थे। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के इन्द्रभूति गौतम आदि ११ गणधर थे। वे सभी अप्रतिम मेधा के धनी थे, उनमें भगवान की अर्थरूप दिव्य ध्वनि को शब्द रूप में निबद्ध करने की अपूर्व क्षमता थी। द्वादशांग श्रुत उन्हीं के द्वारा जन भाषा में निबद्ध किया गया था। वे सभी श्रुत केवली थे, सभी तद्भव मोक्षगामी थे। अंतिम गणधर सुधर्मा स्वामी थे जैन धर्म में भगवान महावीर के उपरांत न तो कोई तीर्थंकर हुआ न ही इस अवसर्पिणी काल में आगे होगा और न ही सुधर्मा स्वामी के बाद कोई गणधर। जब तीर्थंकर ही नहीं तो गणधर कहां से?

दिगम्बर जैन मूल आम्नाय के किसी आचार्य द्वारा अतीत में गणधराचार्य की पदवी धारण करने का कोई उल्लेख हमारे देखने सुनने में नहीं आया।

अब २०वीं सदी के उत्तरार्द्ध में गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज के रूप में गणधर परम्परा का पुनः अवतरण हुआ है। उनकी कीर्ति गाथा तथा एक शिष्या आर्यिका जी के प्रति विशेष अनुरक्ति (जो उन्हें पापा कहती है) के चर्चे कुछ वर्ष पूर्व धर्म मंगल की विदुषी सम्पादिका जी ने विस्तार से प्रकाशित किए थे। एक दूसरे गणधराचार्य श्री नेमिसागर म. की आध्यात्मिक यात्रा तो और भी विचित्र रही थी। उन्होंने आत्म ग्लानि वश आत्महत्या का प्रयास किया था परन्तु अस्पताल में कुशल चिकित्सकों ने उन्हें बचा लिया। फिर वे मुनि वेश छोड़ सवस्त्र गृहस्थ होकर सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगे। हम कामना करते हैं कि श्री शशांक सागर गणधराचार्य इन दोनों जैसी कीर्ति न अर्जित करें।

अब आ.श्री सिद्धान्तसागर जी ने अपने परम शिष्य को गणधराचार्य बना गणधरों की परंपरा को आगे बढ़ाया है। हम अपनी अल्पबुद्धि में समझते थे कि गणधराचार्य केवल तीर्थंकरों के ही होते हैं तथा यह अन्य आचार्यों के ऊपर का पद है लेकिन जब एक आचार्य अपने शिष्य को इस पद से अलंकृत कर सकता है तो निश्चय ही गणधर आचार्य से निम्न कोटि में आते होंगे। या फिर, आचार्य श्री अपने को तीर्थंकर के समकक्ष मानते होंगे। जानकार विद्वज्जनों से अपेक्षा है कि इस विषय पर आगम के आलोक में प्रकाश डालें।

भाषा समिति–

भाषा समिति का पालन करना जैन साधु संतों के त्रयोदश विध चारित्र का एक अनिवार्य अंग है। भाषा संयम के कारण वे अपने विरोधी को भी कभी कठोर अप्रिय अपशब्द नहीं कहते। यहां तक कि भाषा समिति जैन संस्कृति का अंग ही बन गई तथा कठोर शब्दों के प्रयोग में हिंसा का भाव माना जाने लगा। धर्मनिष्ठ जैन बंधु पारस्परिक संबोधन में भइयों, भय्या, शब्द का ही सामान्यतया प्रयोग करते थे जो भव्य शब्द का अपभ्रंश रूप है। जैन संस्कृति में जिस जीव में (अवसर मिलने पर) मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता हो उसे भव्य कहा जाता है तथा तीर्थंकर महाप्रभु अपना धर्मोपदेश भव्य जीवों को ही संबोधित करते है (भो भव्वों) ही प्रारम्भ करते थे। गुजरात में जैन धर्म के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप ही कदाचित् वहां नाम के साथ 'भाई' शब्द लगाने का रिवाज पड़ा होगा। (संस्कृत के 'भ्रातृ' शब्द से पंजाबी में भ्राजी तथा हिन्दी में 'भाति' (महिलाओं के मायके वालों के लिए विवाह आदि में प्रयोग किया जाने वाला संबोधन) शब्द आए हैं।)

इस संदर्भ में दिशाबोध के फरवरी-मार्च (संयुक्तांक) २००२ ई. के अंक में प्रकाशित उसके विद्वान सम्पादक डा. चिरंजीलाल बगड़ा के चांदखेड़ी अतिशय क्षेत्र पर प्रवास के प्रसंग से निम्नलिखित टिप्पणी अवलोकनीय है-

'चांदखेड़ी क्षेत्र में प्रवास के दौरान बाहर दुकानों पर कैसेट बज रहे थे। एक जगह सुनाई पड़ा मुनि श्री- - संबोंधन कर रहे थे- "अशोक पाटनी आर. के. मार्बल्स वाला, इस समाज का **सबसे गंदा व्यक्ति** है। इसका **अधिकाधिक मैल धोना** है।" मुनि श्री का इशारा उससे अधिकाधिक दानराशि घोषित करवाने का था।- - मुनि श्री स्वयं कहते हैं कि मैं तो हाथी हूँ। सब जानते हैं कि मदमस्त हाथी कैसा होता है- - मद कैसा भी हो सम्यक्त्व में बाधक ही होता है।'

मुनि श्री की भट्टारक पद-स्थापना -

''बेड़िया (गुजरात)। श्री दिगम्बर जैन पदमावती धाम बेड़िया में मुनिराज जयसागर जी को परम भट्टारक पद पर विधि विधानपूर्वक १५ मई (श्रुत पंचमी) को स्थापित किया गया। प्रवाहित पंचकल्याणक महोत्सव में धर्म क्षेत्र की सुरक्षा के लिए अति आवश्यक समझकर यह किया गया है इस क्षेत्र का विस्तार बहुत है, इसलिए इस पद की स्थापना जरूरी है।.. जैन धर्म का संरक्षण, संवर्द्धन भट्टारकों ने सदियों नग्न दिगम्बर अवस्था में किया, बाद में किन्हीं कारणों से वस्त्र सहित होकर की है। अब पुनः पूर्व के अनुसार **मुनि श्री जयसागर जी निग्रन्थ नग्न अवस्था में** जैन धर्म का संरक्षण करेंगे। उनका योगदान इस क्षेत्र के लिए ही नहीं होगा बल्कि **अन्य क्षेत्रों में भी यही पद्धति स्थापित की जाएगी।** उनके अन्दर सम्पूर्ण शास्त्र ज्ञान, गच्छ की अभिवृद्धि मनोज्ञता तथा जिन धर्म प्रभावना गुण ओतप्रोत है। उपदेश देकर धर्म की अभिवृद्धि कर सकते मुनिराज जयसागर जी महाराज इसके योग्य हैं। इस क्षेत्र में इनके रहने से अवश्य ही जैन धर्म का संरक्षण संवर्द्धन होगा। बेड़िया गोधरा-बड़ौदा नेशनल हाइवे पर गोधरा से ३० कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

मुनि जयसागर जी ने अपने संबोधन में बताया कि 'आज मेरे इस पद पर उपस्थापना से मैं बहुत ही प्रसन्न हूं।' (उनकी दृष्टि में कदाचित् भट्टारक पद मुनि पद से ऊँचा है तथा इस पद पर प्रतिष्ठित करके गुरु महाराज ने उनकी पदोन्नति की है,) बालाचार्य ने उपस्थापना में सहयोग करने के पश्चात कहा कि **गृहस्थ का इतना ही कर्तव्य है कि वह साधु को नमस्कार करे तथा समय पर नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान दे। क्या? क्यों? अगर मगर आदि की आवश्यकता नहीं है। अपने अपने धर्म के अनुसार प्रवृत्ति करने पर व्यवस्था सही रहती है।''**

(अंकलीकर वाणी जून, २००२)

बालाचार्य श्री ने इस अवसर पर अपने उद्‌बोधन में गृहस्थों के कर्तव्यों को जो परिभाषित किया है, वह उनकी उस व्यथा का परिचायक है जो उनके भट्टारक पदाभिषेक के अवसर पर श्रावकों के एक वर्ग द्वारा की गई व्यापक आलोचना से पहुंची चोट से हुई थी। काश बालाचार्य जो थोड़ा यह भी आत्मालोचन करते कि जिस कुन्दकुन्द आम्नाय के वे संवाहक हैं क्या उन महर्षि ने श्रमणाचार का ऐसा ही निरूपण किया था जैसा कि वे पालन करते द्रष्टि गोचर हो रहे हैं।

प्रकाशित समाचार में इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है कि परम भट्टारक पद पर स्थापित किए गए श्री जयसेन मुनिराज किन आचार्य श्री के शिष्य हैं किन्तु चूंकि यह कार्यक्रम तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज ससंघ तथा उनके

परम शिष्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी महाराज ससंघ के सान्निध्य में तथा उनके अनुमोदन से ही सम्पन्न हुआ, अनुमान यह लगाना कदाचित अनुचित न होगा कि वे आचार्य सन्मतिसागर जी के ही शिष्य या प्रशिष्य हैं।

अभी तीन वर्ष पूर्व बालाचार्य श्री ने सागवाड़ा (राज.) के निकट की पहाड़ी पर करोड़ों रुपयों का भव्य निर्माण कराकर एक नए अतिशय क्षेत्र योगीन्द्रगिरि की स्थापना की है। उस क्षेत्र के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के दौरान २२ जून १६६६ को ज्ञानकल्याणक के दिन तीन भट्टारक स्वामियों के सान्निध्य में **पीठाधीश भट्टारक स्वामी बालाचार्य योगीन्द्र सागर जी** की नग्न मुनि वेश में ही डोली में बैठाकर सहस्रों श्रद्धालुओं की जय जयकार के बीच शोभायात्रा निकाली गई थी तथा श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्ति जी द्वारा चातुर्मासोपरान्त नवम्बर माह १६६६ में उनका भट्टारक पदाभिषेक किया जाना घोषित किया गया था। किन्तु उस समय विद्वत् समाज द्वारा एक मुनि के बिना मुनि दीक्षा छेद किए भट्टारक पद पर अभिषिक्त किए जाने के उपक्रम की व्यापक कटु आलोचना हुई थी। अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष डा. रमेशचंद्र जी ने तो किसी दिगम्बर मुनि के भट्टारक पद पर अभिषिक्त किए जाने के उपक्रम का विद्वत् परिषद के घोर विरोध का ऐलान करते हुए परिषद के सभी सदस्य विद्वत् जनां का आह्वान किया था कि वे इस अभिषेक को सम्पन्न न होने दें। यह भी कहा गया था कि और भी कई मुनिराज भट्टारक पदासीन होने के इच्छुक है। इस विरोध के बावजूद कुछ जैन पत्रों में प्रकाशित समाचार के अनुसार (जिसका उल्लेख प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने जैन प्रचारक के दिसम्बर १६६६ के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में किया है) मुनि कुंजर बालाचार्य श्री का भट्टारक पट्टाभिषेक पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार सम्पन्न हो ही गया। तथापि प्राचार्य जी के लेख की प्रतिक्रिया में बालाचार्य श्री के श्रद्धालु कतिपय विद्वानों ने घोषित किया था कि बालाचार्य जी भट्टारक अभिषिक्त नहीं हुए। श्री जयसेन मुनिराज के भट्टारक पदासीन होने से यह तो प्रमाणित हो गया कि और भी मुनिराज भट्टारक बनने के इच्छुक हैं। पर इस बार भी विद्वत् परिषद ने कोई विरोध किया हो, ऐसा अभी तक पढ़ने में नहीं आया।

उत्तर भारत में भट्टारक पीठों का पूर्ण लोप तो बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही हो गया था लेकिन दक्षिण भारत (महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि) में भट्टारक पीठें जैन समाज में अभी भी बहुमान्य है। अतः यदि अभी तक उपेक्षित रहे बेड़िया क्षेत्र (गुजरात) की समुचित व्यवस्था एवं विकास के लिए वहां पर भट्टारक पीठ की स्थापना की जाय तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है।

चिन्तनीय केवल यह है कि क्या कोई दिगम्बर जैन मुनि भट्टारक पदासीन होने के बाद जैन मुनि कहलाने का अधिकारी रह जाता? दिगम्बर जैन मुनि कहलाने के लिए मात्र नग्न मुनि वेश पर्याप्त नहीं है, पंच महाव्रतों तथा श्रमणाचार के अन्य नियमों का शास्त्रानुसार अनुपालन भी उसकी अनिवार्य शर्त है। परिग्रही भट्टारक चाहे नग्न रहें या सवस्त्र अपरिग्रह महाव्रत का पालन कर ही नहीं सकता। बालाचार्य जी के प्रसंग से उस समय साध्वाचार की दृष्टि से भट्टारकों की पद मर्यादा के विषय में समाज में विशद चर्चा चली थी तथा विद्वज्जनों का निष्कर्ष था कि भट्टारक चाहे वे नग्न हों या सवस्त्र मोक्ष मार्ग के साधकों में क्षुल्लक के समकक्ष भी माने जाने योग्य नहीं है। इस विषय पर शोधादर्श ४० में हमारा सम्पादकीय लेख 'भट्टारक क्षुल्लक भी नहीं' भी अवलोकनीय है। श्री जयसेन महाराज अब अपने को भट्टारक कहलायें या परम भट्टारक (जो तीर्थंकर महावीर प्रभु का भी विरुद था) या अन्य भट्टारक स्वामियों की तरह 'जगद्गुरु', वह नग्न रहते हुए भी दिगम्बर जैन मुनि कहलाने के अधिकारी नहीं रह गए हैं। केवल दिगम्बर मुनि वेश ही दिगम्बर जैन मुनि होने के लिए पर्याप्त नहीं है। करुणा एवं शुचिता के उपकरण पिच्छी एवं कमण्डल दिगम्बर जैन मुनि चर्या के अनिवार्य अंग हैं। इनका किसी नग्न भट्टारक-परम भट्टारक के हाथों में रहना समाज में उनके मुनि होने का भ्रम पैदा करने वाला है। हमारी अल्प बुद्धि में वे अब इन उपकरणों के रखने के अधिकारी नहीं रह गए हैं।

दिगम्बर मुनि वेश में ही भट्टारक पद पर अभिषेक किए जाने के पक्ष में नग्न मुनि वेश में ही रहने वाले १५ वीं शती के भट्टारक सकलकीर्ति जी का उदाहरण दिया जाता है जो महाकवि, निग्रंथराज, तपोनिधि आदि के विरुद से अलंकृत थे। पर उस समय भट्टारकों से पृथक शुद्ध चर्या के पालन करने वाले मुनिराज रह ही नहीं गए थे पर जो अब हैं।

तपस्वी सम्राट पू. आचार्य सन्मतिसागर म. के एक अन्य परम शिष्य आचार्य सारस्वतसागर म. की कीर्ति गाथा धर्म मंगल की जागरूक सम्पादिका जी ने २ जुलाई के अंक में प्रकाशित की है। वे आचार्य श्री अपनी एक श्रद्धालु कुमारी जी के प्रेम जाल में कुछ ऐसे उलझे कि अब मुनि वेश का ढोंग छोड़कर उसके साथ सुखपूर्वक गृहस्थी बसाकर रह रहे हैं।

जब कोई साधु जीवन पर्यन्त के लिए स्वीकार किए गए यम नियमों से स्खलित होकर उन्हें ही त्याग देता है तो इसका कुछ दोष तो उसके दीक्षा गुरु को भी जाता है जिन्होंने मात्रता की समुचित परख किए बिना ही उसे इस परमेष्ठी पद की दीक्षा दे दी।

शाकाहार प्रचार–कितना सार्थक–

हमारे एक अनन्य मित्र हैं वयोवृद्ध परम धर्मनिष्ठ व सम्पन्न सुश्रावक श्री महावीर प्रसाद जैन जो चांदनी चौक दिल्ली के सर्राफा बाजार के प्रतिष्ठित व्यापारी रहे हैं। वर्षों पूर्व व्यापार से पूर्ण निवृत्ति लेकर अपना सारा समय धर्म ध्यान, तीर्थाटन, तथा शाकाहार प्रचार कार्य में लगा रहे है। रीढ़ की हड्डी में भयंकर असाध्य रारेग से पीड़ित होने के बावजूद वह रोज देव दर्शन-उपासना के लिए कार से श्री मंदिर जी जाते रहे हैं तथा अब कुछ वर्षों से प्लेन, कार द्वारा श्री सम्मेदशिखर जी, हस्तिनापुर, श्रवणबेलगोला, तिजारा आदि तीर्थों की यात्रा व मुनिसंघों के सान्निध्य में रहकर साल में १० माह बिता रहे हैं, तीर्थों पर ध्यान शिविर लगाते हैं तथा स्वयं भी घंटों ध्यान लगाते हैं और अब तो लगता है कि उन्होंने समाधिमरण का निश्चय कर लिया है तथा क्रमिक रूप से उसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

जिनवाणी के अनन्य सेवक महावीर प्रसाद जी कई धर्मग्रंथ स्वयं प्रकाशित कर तथा अन्य कई की सैकड़ों प्रतियां खरीदकर विद्वानों तथा स्वाध्यायी श्रावकों में वितरित करते रहे हैं तथा पिछले तीस वर्षों में धर्म ग्रंथों के लगभग तीस हजार पार्सल विद्वानों-मंदिरों को निःशुल्क भेज चुके हैं। शाकाहार प्रचार को तो उन्होंने अपने शेष जीवन का मिशन ही बना लिया है। इस हेतु उन्होंने विपुल आकर्षक सचित्र प्रचार सामग्री का बढ़िया आर्ट पेपर पर निर्माण कराया है जिसे वे प्रायः निःशुल्क वितरित करते रहते हैं तथा अन्य शाकाहार प्रचारकों व शाकाहार प्रेमियों को वितरण हेतु लागत मूल्य पर उपलब्ध कराते हैं। उनके द्वारा निर्माण कराई गई कुछ प्रचार सामग्री का विवरण निम्न प्रकार है-

(१) चित्रावली छोटी आर्ट पेपर- ४० पैसा, ४.५X५.५- रु. १५

(२) चित्रावली बड़ी- सनलिट बांड पेपर, ३५ /-, आर्ट पेपर-५०/-

(३) ६ प्रकार कलेन्डर-६/- प्रति

(४) ३ प्रकार आर्ट कार्ड ५"X७"---३/- प्रति

(५) ३५ प्रकार स्टिकर्स रु. ४०/- के १००

(६) शाकाहार पुस्तक लेख माला-३०/-

(७) ४ प्रकार की वीडियो कैसेट-पशुवध ग्रह/अहिंसा/ मादक द्रव्यों से हानियां/गर्भ हत्या- चारों. ५००/- आदि आदि

(पूर्ण विवरण व प्राप्ति के लिए सम्पर्क करें- श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, शाकाहार प्रचारक, ७/३६ए, दरियागंज, नई दिल्ली -२ फोन ०११-३२५६१४५, ३२८८६३५)

इस चित्ताकर्षक सामग्री का प्रदर्शनियों व सार्वजनिक मेलों, उत्सवों में व्यापक रूप से प्रदर्शन किया जाना वांछनीय है। मांसाहार के विरोध में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए शाकाहारियों के द्वारा मांसाहार विरोधी प्रदर्शनियां समय-समय पर जगह-जगह आयोजित किया जाना अत्यावश्यक है।

शाकाहार के मौन प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जी शाकाहार प्रचार सामग्री के निर्माण एवं निःशुल्क वितरण पर अब तक लाखों रुपए व्यय कर चुके हैं। इंदौर के स्व. डा. नेमिचंद जी (सम्पादक- तीर्थंकर) भी शाकाहार प्रचार के लिए पूर्ण रूपेण समर्पित थे। पर वे मुखर प्रचारक थे तथा वृद्धावस्था में भी शाकाहार पर व्याख्या न देने हेतु उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम रेल-या कार से निरंतर यात्रा करते रहते थे। चेन्नई की महावीर फाउंडेशन ने शाकाहार प्रचार में उनके महती योगदान के लिए रु. ५ लाख के पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया था।

देश में और भी अनेक व्यक्ति एवं संस्थाएं हैं जो शाकाहार प्रचार के कार्य में लगे हुए हैं। शाकाहार प्रचार प्रदर्शनियां भी धार्मिक उत्सवों तथा सार्वजनिक मेलों में बहुधा लगाई जाती हैं।

हम शाकाहार प्रचार के अर्थशास्त्र के विषय में कुछ समय से चिन्तन करते रहे हैं। हमारे भारत देश की जलवायु ऐसी है कि इसके हर भाग में विभिन्न प्रकार के अन्न, सब्जी व वनस्पतियां प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं। हमारे इस देश का निवासी मूलतः शाकाहारी है। यह दूसरी बात है कि अनेको को मांस व्यंजनों से भी परहेज नहीं है। जैन, वैष्णव आदि कुछ समाजों को छोड़कर ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं जो गाहे बगाहे मांस व्यंजनों का स्वाद न रखते हों और अब तो सुनने में आता है कि शाकाहारी अहिंसक जैन समाज के युवा वर्ग ने भी अंडे-मांस के व्यंजनों की घुसपैठ होने लगी है।

यदि कोई सर्वेक्षण कराया जाय तो ऐसे व्यक्तियों की संख्या कदाचित् उंगलियों पर गिनने लायक ही मिलेगी जो जन्मतः मांसाहार के आदी रहे और जिन्होंने हमारे इस शाकाहार प्रचार से प्रभावित होकर मांसाहार का आजीवन त्याग कर दिया हो। ऐसे व्यक्ति भी कम ही मिलेंगे जिन्हें मांस व्यंजनों के स्वाद का चस्का लग गया हो और फिर इस प्रचार के फलस्वरूप मांसाहार की बुराइयां समझकर उन्होंने उसका पर आजीवन त्याग कर दिया हो। भारतीय प्रशासनिक सेवा के उच्च अधिकारी हमारे एक जैन धर्मावलम्बी मित्र (अब दिवंगत) एक बार किसी पार्टी में अनजाने में मछली की पकौड़ी खा आए। उनके स्वयं के कथनानु उन्हें रात भर अपने बदन से मछली

की दुर्गंध आती रही जिसके कारण वह सो तक नहीं पाए। लेकिन फिर एक दो बार उन्होंने पार्टियों में मछली के व्यंजन खा लिए और फिर तो उन्हें मछली का चस्का ही पड़ गया और गाहे बगाहे होटलों में जाकर मछली-व्यंजन खाने लगे (क्योंकि घर में तो यह संभव था नहीं)। आज हमारे पूर्ण अहिंसक जैन समाज के युवा वर्ग में भी होटलों आदि में जाकर मांस-व्यंजनों का स्वाद लेने की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। यदि हमारे प्रचार अभियान से ऐसे व्यक्तियों का मांस व्यंजनों के स्वाद लेने का चस्का उसकी बुराइयों को समझकर छूट जाए तो निश्चय ही यह बड़ी उपलब्धि होगी।

मांसाहार के विरोध में सामान्यतया यह तर्क दिए जाते हैं कि मनुष्य के शरीर की संरचना शाकाहारी पशुओं जैसी है नाकि मांसाहारी पशुओं के समान और प्रकृति ने उसे शाकाहारी प्राणी ही बनाया है। यह सही है किन्तु चिकित्सकीय दृष्टि से यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि क्या पकाकर तैयार किए गए अंडे-मांस के व्यंजनों के पाचन में और गरिष्ठ शाकाहारी व्यंजनों के पाचन में मनुष्य के पाचन तंत्र की क्षमता में कोई अन्तर लक्षित होता है। बताया जाता है कि अंडे-मांसाहार के सेवन से हड्डियां कमजोर हो जाती हैं, आंतों का कैंसर, गुर्दे में पथरी, हृदयाघात टुबररक्लोसिस, पेंट में केंचुए, कब्ज आदि रोग हो जाते हैं किन्तु हम नहीं समझते कि इन रोगों का प्रतिशत शाकाहारियों में अपेक्षाकृत अत्यल्प है। देखने में तो नहीं आता कि औसतन शाकाहारी मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक निरोग, स्वस्थ और शक्तिशाली होते हों। इसका चिकित्सकीय दृष्टि से प्रमाणिक विश्लेषण किया जाना चाहिए।

श्री महावीर प्रसाद जी द्वारा संकलित एवं निर्मित कराई गई शाकाहारी प्रचार सामग्री में मनुष्य की मांसाहार प्रवृत्ति के कारण निरीह पशु-पक्षियों की निर्मम हत्या जनित हिंसा के क्रूर व घिनौने पक्ष पर अधिक बल देकर मनुष्य की स्वाभाविक करुणा वृत्ति को जागृत करने का भी प्रयास किया गया है जो इस सामग्री को और अधिक हृदयग्राही बना देता है।

हम कितना ही प्रचार क्यों न करें जन्मतः मांसाहारियों को पूर्णतः शाकाहारी बनाने में अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। हमें शाकाहारी समाजों के बीच अपना प्रचार सघन रूप से चलाना चाहिए ताकि इसमें हो रही मांसाहार की घुसपैठ को प्रभावी रूप से रोका जा सके। अपने शाकाहार-प्रचार अभियान का नाम भी बदलकर यदि मांसहार निषेध अभियान रखें तो कदाचित अधिक अर्थपूर्ण होगा।

- अजित प्रसाद जैन

स्मृति दिवस

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १४वीं पुण्यतिथि पर उनका स्मृति दिवस **'शोधादर्श'** के प्रधान सम्पादक वयोवृद्ध विद्वान श्री अजित प्रसाद जैन की अध्यक्षता में मनाया गया। लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर इस समारोह में मुख्य अतिथि तथा हिन्दी विभाग के पूर्व रीडर डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी विशिष्ट अतिथि थे। संचालन श्री रमाकांत जैन ने किया।

वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति और श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण, दीप-प्रज्वलन और डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' व 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन तथा श्री रमाकान्त जैन द्वारा वाणी-वंदना से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। अपने प्रास्ताविक उद्‌बोधन में सभी समागत का स्वागत करते हुए डॉ. शशिकांत ने डाक्टर साहब द्वारा भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय के क्षेत्र में किये गये अवदान पर प्रकाश डाला और उनकी कृति 'युग-युग में जैन धर्म' के प्रकाशित हो जाने का सुखद समाचार दिया। डॉ ओमप्रकाश त्रिवेदी ने इस कृति का विस्तार से परिचय श्रोताओं को दिया।

डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने डाक्टर साहब को अपनी काव्यांजलि अर्पित की और श्री भगवान भरोसे जैन ने उन्हें प्रिय रहा आध्यात्मिक भजन सुनाया। डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, श्री काशीनाथ गोपाल गोरे, डॉ. पूर्णचंद्र जैन, श्री नरेश चंद्र जैन, श्री सूर्यकांत जैन और श्री अजित प्रसाद जैन ने डाक्टर साहब से सम्बँधित अपने संस्मरण सुनाये। श्री रोहित कुमार जैन, श्री शैलेन्द्र शुक्ल और डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए डाक्टर साहब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। कु. शगुन जैन ने कैसियों पर अपने भजन, श्री रवि अवस्थी ने अपने सरस गीतों तथा श्री अनिल बांके ने अपनी हास्य-व्यंग्य रचनाओं से वातावरण को रससिक्त किया।

- अंशु जैन 'अमर'

समाचार विविधा

छत्तीसगढ़ राज्य में राज्य स्तरीय भगवान महावीर जन्म कल्याणक महोत्सव -

३० अप्रैल, २००२ को रायपुर के टाउन हॉल में साहू रमेशचन्द्र जैन की अध्यक्षता में छत्तीसगढ़ राज्य स्तरीय क्रियान्वयन समिति के तत्वावधान में भगवान महावीर २६०० वां जन्म कल्याणक महोत्सव समापन समारोह सम्पन्न हुआ। समारोह में मुख्य अतिथि राज्य के मुख्यमंत्री श्री अजीत जोगी थे और संचालन छत्तीसगढ़ जैन महासभा के अध्यक्ष श्री बी. आर. जैन ने किया। भगवान महावीर के तैल चित्र पर पुष्पांजलि और दीप-प्रज्वलन से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। दिल्ली से पधारे श्री ताराचन्द प्रेमी ने मंगलाचरण किया और रायपुर की कु. सोनिया जैन ने 'मेरी भावना' प्रस्तुत की। समारोह में मुख्यमंत्री ने भगवान के जन्म कल्याणक महोत्सव की अवधि आगे एक वर्ष तक बढ़ाने और राज्य में कोई भी नया कत्लखाना नहीं खुलने देने की घोषणा की तथा जैन समाज को सामाजिक रचनात्मक कार्यों के लिये शासन द्वारा सहायता प्रदान किये जाने का आश्वासन दिया।

श्री सम्मेदशिखर जी पर 'पूर्वा एक्सप्रेस' रुकना -

रेल मंत्रालय, भारत सरकार ने श्री सम्मेदशिखर जी के यात्रियों की सुविधार्थ पारसनाथ स्टेशन पर 'पूर्वा एक्सप्रेस' (अप और डाउन) को १६ अप्रैल, २००२ से रोकना प्रारम्भ कर दिया है। नई दिल्ली से अलीगढ़, टूण्डला, इटावा, कानपुर, इलाहाबाद, मुगलसराय और गया होकर पारसनाथ स्टेशन जाने वाली और वहाँ से नई दिल्ली लौटने वाली गाड़ियों का विवरण निम्नवत है -

गाड़ी नं.	स्टेशन	दिन	समय	स्टेशन	समय
२३८२	नई दिल्ली	सोम, मंगल, शुक्र	१६-१५	पारसनाथ	१०-३८
२३८१	पारसनाथ	बुध, गुरु, रवि	१३-४८	नई दिल्ली	०८-१०

केकड़ी में पांच दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला- भगवान महावीर के २६०० वर्ष -

राजस्थान जैन समाज द्वारा आयोजित पंच कल्याणक महोत्सव की श्रृंखला में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज की प्रेरणा से व उनके सानिध्य में श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ के तत्वावधान में केकड़ी (अजमेर) में २६ मई से ३० मई, २००२ तक 'भगवान महावीर के २६०० वर्ष' विषयक एक पांच दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला सम्पन्न हुई। इसका उद्घाटन तत्कालीन केन्द्रीय कपड़ा राज्य मंत्री श्री धनंजय कुमार ने किया और संचालन केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, लखनऊ में बौद्ध दर्शन विभागाध्यक्ष

डॉ. विजय कुमार जैन ने। कार्यशाला परामर्शदाता मण्डल में अन्य के साथ डॉ. शशि कान्त भी रहे। दस सत्रों में सम्पन्न इस कार्यशाला में देश के ५४ विद्वान मनीषियों द्वारा अपने शोध-पत्रों का वाचन किया गया और जो विद्वान शोध पत्र प्रेषित करने के पश्चात कार्यशाला में किन्हीं कारणों से उपस्थित होने में असमर्थ रहे उनके शोध पत्रों की संक्षिप्ति प्रस्तुत की गई। **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन ने 'अंग्रेजी शासन में जैन धर्म' तथा सह सम्पादक श्री रमाकान्त जैन ने 'मुगलकाल में जैन धर्म' विषयक अपने शोध पत्र इस कार्यशाला हेतु प्रस्तुत किये थे।

इस अवसर पर प्राच्य श्रमण भारती मुजफ्फरनगर एवं अन्य द्वारा हाल ही में प्रकाशित नौ पुस्तकों का विमोचन भी हुआ। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा प्रणीत "युग-युग में जैन धर्म" का विमोचन केकड़ी निवासी श्री पद्मचन्द्र रांटा ने किया। अन्य विमोचित पुस्तकें हैं- श्री शिव नारायण सक्सेना कृत "डॉ. कामता प्रसाद जैन का व्यक्तित्व और कृतित्व"; ज्ञानसागर जी की कहानी चित्रों की जबानी; श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ परिचायिका; सन्मति वाणी विशेषांक; डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर रचित "जैन संस्कृति कोष (३ भाग)"; पूज्य उपाध्याय श्री के प्रवचन "क्षणभंगुर जीवन"; डॉ. प्रेमसुमन जैन उदयपुर द्वारा सम्पादित "प्राकृत एवं जैन धर्म समीक्षा" तथा डॉ. राका जैन एवं डॉ. विजय कुमार जैन लिखित "श्रमण कल्चर"।

श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस -

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, शनिवार, १५ जून, २००२ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ स्थित शोध पुस्तकालय में श्री कन्हैयालाल जैन की अध्यक्षता में मंगलाचरण के साथ श्रुतपंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। श्री रमाकान्त जैन, डॉ. शशि कान्त, डॉ. पूर्णचन्द्र जैन और श्री अजित प्रसाद जैन ने ज्ञान की आराधना, संरक्षण और संवर्द्धन को अर्पित श्रुत पंचमी पर्व के महत्व और उसकी ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला। ईस्वी सन् ७५ की ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को ताड़पत्रों पर उत्कीर्ण तथा शौरसेनी प्राकृत भाषा में आचार्य धरसेन की प्रेरणा से भगवन्त पुष्पदन्त-भूतबलि मुनिवर्य द्वय द्वारा विरचित जैन धर्म के महान सिद्धान्त ग्रन्थ **षट्खण्डागम** का लोकार्पण हुआ था और चतुर्विध संघ द्वारा वाग्देवी सरस्वती की पूजा की गई थी। इस पर्व के कारण ही कालान्तर में शास्त्र भण्डारों, ग्रन्थागारों की स्थापना संभव हो सकी। २६ वर्ष पूर्व १९७६ ई. में इस दिन प्रस्तुत शोध पुस्तकालय की स्थापना हुई थी जिसमें जैन धर्म की सभी आम्नायों के साहित्य के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन हेतु जैनेतर दार्शनिक एवं लौकिक साहित्य प्रचुर मात्रा में संजोया गया है और अनेक शोधार्थी छात्र-छात्रायें इसमे लाभान्वित हो रहे हैं। श्री रोहित कुमार जैन द्वारा प्रसंगानुकूल काव्य पाठ और जिनवाणी स्तुति के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। श्री विजय नाहर ने प्रभावना का पुण्यलाभ लिया।

अभिनन्दन

❑ कु. निधि श्रीवास्तव को उनके शोध-प्रबन्ध **'साहित्य एवं कला में पार्श्वनाथ'** पर तथा **श्रीमती गुंजन श्रीवास्तव** को उनके शोध-प्रबंध **'वीरोदय महाकाव्य-काव्य शास्त्रीय परिशीलन'** पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की। इन दोनों शोध छात्राओं ने हमारी समिति के शोध पुस्तकालय में उपलब्ध साहित्य का अध्ययन कर अपना शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया है।

❑ **श्री पुरंदर भाऊ चौगुले**, व्याख्याता दर्शनशास्त्र और मानस शास्त्र, वेणूताई चह्वाण महाविद्यालय, कराड को उनके शोध-प्रबन्ध **'Sallekhana: A philosophical Study'** पर शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर ने विद्यावाचस्पति उपाधि प्रदान की।

❑ **श्रीमती आभा रानी जैन** को उनके शोध-प्रबन्ध **'मुनि रामसिंह विरचित दोहापाहुड ग्रन्थ का अनुशीलन'** पर तथा **श्री अशोक कुमार जैन** को उनके शोध-प्रबंध **'आचार्य कुंदकुंद के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन'** पर श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, ने विद्यावारिधि उपाधि प्रदान की।

❑ **सुश्री ज्वालाम्मा** को उनके शोध-प्रबन्ध **'कर्नाटक में यक्ष पूजा'** और **श्रीमती एम. एस. पद्मा** को उनके शोध-प्रबन्ध **'पंचास्तिकाय संग्रह और द्रव्य संग्रहः तुलनात्मक अध्ययन'** पर मैसूर विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

❑ **श्री बाहूबलि हण्डुरा** को उनके शोध प्रबन्ध 'Contribution of Belguam Region to Jain Heritage' पर कर्णाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

❑ भौतिक शास्त्र विभागाध्यक्ष **प्रो. पन्नालाल जैन, दमोह,** को उनके शोध-प्रबन्ध 'चार्ज कैरियर माइग्रेशन एण्ड ट्रेपिंग प्रापर्टीज ऑफ सम ऑफ दि लीडिंग ऑर्गैनिक पॉलीमर्स' पर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

❑ २४ मार्च, २००२ को जयपुर में राजस्थान जन मंच द्वारा वरिष्ठ पत्रकार एवं जैन संस्कृति रक्षा मंच के अध्यक्ष **श्री मिलापचंद डंडिया** को देवालय संरक्षण में विशिष्ट योगदान हेतु **'समाजरत्न २००२'** की उपाधि प्रदान की गई।

❑ १५ अप्रैल को कोलकाता में अ. भा. दिगम्बर जैन प्रतिभा सम्मान समारोह समिति एवं श्री दिग. जैन नवयुवक मण्डल, कोलकाता द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से चयनित जिन २६ प्रतिभाओं को **जैन राष्ट्र गौरव** अलंकरण से सम्मानित किया गया वे हैं- **श्री विजय दादा आवटी,** कोल्हापुर (आदर्श शिक्षक), **सौ. सुरेखा सी शहा**, सोलापुर (साहित्यकार), **डॉ. धर्मचंद जैन**, लखनऊ (चिकित्सा वैज्ञानिक), **डॉ. जी. जवाहरलाल**, हैदराबाद (पुरातत्त्व);, **श्री सुधीर जैन**, सतना (संग्रहकर्ता); **कु. पल्लवी काशलीवाल**, नासिक (बाल जादूगर); **कु. स्नेहा गांधी**, सोलापुर (बाल तबलावादन); **श्री पारसनाथ उपाध्ये**, बेलगांव (बहुमुखी प्रतिभा); **श्रीमती अर्चना पाटनी**, जयपुर (शास्त्रीय नृत्य); **कु. अस्मिता काला**, जयपुर (लोकनृत्य); **श्री एम. एम. जैन, कोटा** (वन्य विशेषज्ञ); **कुमारी सारिका जैन**, तेजपुर, असम (गायन); **डॉ. संदीप नारद**, इंदौर (रसायन वैज्ञानिक); **कु. इन्दु जैन**, वाराणसी (रंगमंच कलाकार); **मास्टर आयुष जैन**, मेरठ (खेल-रोमांच); **डॉ. अनुपम जैन**, इंदौर (जैन गणित); **श्री सुल्तान सिंह जैन**, रुड़की (आविष्कारक); **श्रीमती अंजली जैन**, नई दिल्ली (संचार तकनीक); **बाल विदुषी आकृति जैन आहा**, विलासपुर (बाल प्रवचनकार); **प्रो. भागचंद 'भागेंदु'**, दमोह (विद्वत्ता); **डॉ. चन्द्रसेन कुमार जैन**, आरा (भाषाविद्); **श्री नितिन जैन,** सहारनपुर (बाल वैज्ञानिक); **श्री सुरेशचन्द्र जैन**, दिल्ली (चित्रकला); **डॉ. प्रमोद गोदरे**, सागर (शल्य क्रिया); **श्री डी. एन. अक्की**, गोगी (ड्राइंग शिक्षक) तथा **श्री मिश्रीलाल जैन,** गुना (आध्यात्मिक कवि)।

❑ २२ अप्रैल को नई दिल्ली में पत्रकार एवं समाजसेवी **श्री पारसदास जैन** को उनकी सामाजिक-साहित्यिक सेवाओं हेतु **'साहू श्री अशोक जैन स्मृति पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

❑ छत्तीसगढ़ जैन महासभा के संस्थापक सदस्य **श्री सनत जैन, रायपुर,** को नई दिल्ली में 'जैन रत्न' सम्मान से सम्मानित किया गया।

❑ श्रवणबेलगोला में २५ अप्रैल को वाराणसी के **डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'**; श्रवणबेलगोला के **डी. पार्श्वनाथ शास्त्री** व **एस. एम. नेमिराजय्या**; मैसूर के **के. के. आर. शेषगिरि**; बेंगलूर के **डॉ. एच. एस. मदनकेसरी, डॉ. एजासुद्दीन** और **श्रीमती जी. एस. वसंतमाला जयचन्द्र** तथा शेडवाल (जिला बेलगांव) के **अनंतराव के. भोसगे** को **श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार** तथा २७ अप्रैल को कर्नाटक के ख्यात कवि **प्रो. दोड्डरंगेगौड** व **नाट्यांजलि**, बेंगलूर के **श्री अशोक**

कुमार जैन को **श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ सांस्कृतिक प्रशस्ति** से सम्मानित किया गया।

❑ २७ अप्रैल को श्री महावीर जी में **अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर** द्वारा **डॉ. विद्यावती जैन, आरा** को उनकी कृति **'पज्जुण चरिउ'** पर वर्ष २००१ का **स्वयंभू पुरस्कार** और **जैनविद्या संस्थान, जयपुर द्वारा प्रो. राजाराम जैन,** आरा को उनकी कृति **'पुण्यास्रव-कथा (कोष)'** पर वर्ष २००१ का **महावीर पुरस्कार तथा श्री नाथूराम डोंगरीय जैन अवनीन्द्र** को उनकी कृति 'समीचीन सार्वधर्म सोपान' पर वर्ष २००१ का **ब्र. पूरणचंद्र रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** प्रदान किया गया।

❑ जैना (अमेरिका) के पूर्व अध्यक्ष **डॉ. महेन्द्र पांड्या** को अहिंसा, शाकाहार और समाजसेवा के क्षेत्र में योगदान हेतु भारतीय विद्या भवन अमेरिका द्वारा आयोजित विशेष कार्यक्रम में **'अहिंसारत्न'** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

❑ १५ मई को घोषित आई. ए. एस. (मुख्य परीक्षा) के परिणाम में जालंधर के **श्री अभिषेक जैन** ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

❑ २५ मई को पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, में विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित **डॉ. (श्रीमती) मुन्नी जैन** के शोध-प्रबंध **'हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पं. सदासुखदास का योगदान'** का विमोचन हुआ।

❑ दिगम्बर जैन महासमिति की राष्ट्रीय उपाध्यक्षा **श्रीमती सुधा मलैया जैन** को अखिल भारतीय महिला आयोग की सदस्या मनोनीत किया गया।

❑ श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त संस्कृत महाविद्यालय, मुरैना के प्रतिष्ठाचार्य **पं. पवन कुमार शास्त्री 'दीवान'** को धर्म-समाजसेवा हेतु सन् २००१ का **'वाग्भारती पुरस्कार'** दिये जाने की घोषणा की गई।

❑ नई दिल्ली में श्रुत पंचमी-प्राकृत भाषा दिवस पर **डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री,** नीमच तथा **डॉ. के. आर. चन्द्रा,** अहमदाबाद को ५१-५१ हजार रुपये के **आचार्य विद्यानंद शौरसेनी प्राकृत पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

❑ २४ जून को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा घोषित वार्षिक पुरस्कारों में पुस्तकों पर ११ हजार की राशि का विशेष पुरस्कार जिन्हें प्रदान किया गया उनमें वाराणसी के **प्रो. सुदर्शनलाल जैन** का नाम भी है।

❑ १९ जुलाई को श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के प्रबन्धक द्वारा सुचिन्तक **श्री जमनालाल जैन, सारनाथ,** को उनकी कृति 'चिन्तक- प्रवाह - सेवा से श्रेयस की ओर' पर **वर्ष २००१ का श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार** दिये जाने के निर्णय की घोषणा की गई।

❑ २५ जुलाई को नई दिल्ली में भारतीय गणतन्त्र के १२ वें राष्ट्रपति का पदभार भारतरत्न **डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम** ने ग्रहण किया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श परिवार** अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

स्वयंभू पुरस्कार- २००२

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष-२००२ के स्वयंभू पुरस्कार के लिए अपभ्रंश साहित्य से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००२ तक** आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर, १९९६ से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियां सम्मिलित नहीं की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

महावीर पुरस्कार वर्ष २००२ एवं
ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००२

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी के वर्ष-२००२ के **महावीर पुरस्कार** के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबंध की चार प्रतियां दिनांक **३० सितम्बर, २००२** तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को **ब्र. पूरणचंद्र रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** ५००१/-एवं प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। ३१ दिसम्बर, १९९८ के पश्चात प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

शोक संवेदन

❑ ३० मार्च, २००२ को ललितपुर में बुन्देलखण्ड के वरिष्ठ पत्रकार ६८ वर्षीय **डॉ० बाहुबली कुमार जैन** का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया।

❑ २८ अप्रैल को पालडी (अहमदाबाद) में वडिल संघ के गच्छाधिपति आचार्य श्री विजय महोदयसूरीश्वर जी ने पार्थिव देह त्यागी।

❑ २७ जुलाई को नई दिल्ली में भारत के उप राष्ट्रपति एवं राज्यसभा के अध्यक्ष ७५ वर्षीय **श्री कृष्णकान्त** का आकस्मिक निधन हो गया।

उपर्युल्लिखित सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है और उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

जस्टिस एम.एल. जैन, २१५, मन्दाकिनी एन्क्लेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली ने **शोधादर्श** हेतु रु. १,०००/- भेंट किये।

श्री रोहित कुमार जैन, ६, द्वारिकापुरी, इन्दिरानगर, लखनऊ ने समिति के **शोध पुस्तकालय** के लिये दानस्वरूप रु. ६६/- भेंट किये।

डॉ. शशिकान्त-रमाकान्त जैन, चारबाग, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताश्री डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १४वीं पुण्य तिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

श्री ताराचंद जैन अगवाल, पचेवर (टोंक) ने अपने पूज्य पिताश्री पांचूलाल तथा मातेश्वरी श्रीमती कपूरी देवी की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५०/- भेंट किये।

श्री राजेन्द्र कुमार कासलीवाल, हिन्डालको, रेणुकूट (जिला सोनभद्र) ने अपने सुपुत्र एवं श्री ताराचंद कासलीवाल दांता निवासी के सुपौत्र चि. सुमन्त कासलीवाल के विवाहोपलक्ष्य में **शोधादर्श** को रु. १००/ भेंट किये।

श्री किशोरचन्द्र जैन, जैन फर्नीचर, दुर्गापुरी, लखनऊ ने **शोध पुस्तकालय** को छह कुर्सियां भेंट कीं।

शोधादर्शः पाठकों की दृष्टि में

◆ **शोधादर्श**-४५ गागर में सागर भरने जैसा अद्भुत कार्य है। सामग्री-चयन बहुत ही उपयोगी, मार्गदर्शक एवं हृदयग्राही है जो जैन-जैनेतर विचारक मनीषियों की मार्मिक, सुधारपरक दृष्टि अपने में समेटे है। डॉ. नेमीचंद जैन के आलेख 'वंदनाः हिंसा की अहिंसा को' में अत्यन्त मार्मिक चित्रण है और वह आज के युग के उन वीतरागी साधुओं के लिये मूक सीख है जो परस्पर सद्भावपूर्वक मिलने से विरत रहते हैं। रमाकान्त जैन की क्षणिकाएं हमारी दो-राही सोच पर करारी चोट करती है। **शोधादर्श** अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिये आदर्श अनुकरणीय पत्रिका है जो सामाजिक गतिविधियों की चातुर्मासिक सूचना एवं बहु-विध विचारोत्तेजक सामग्री प्रस्तुत कर ज्ञानवर्धन करने के साथ-साथ अनाग्रही दृष्टि से सभी को जोड़ने का मूक प्रयास करती है। सम्पादक मण्डल की सत्य-उद्घाटन की जागरूकता एवं प्रामाणिकता प्रशंसनीय है।

शोधादर्श ४६ में डॉ. ऋषभचंद्र जैन फौजदार का आलेख 'भ. महावीर का जन्म स्थान' ध्यानपूर्वक पढ़ा। उसी संदर्भ में **शोधादर्श** ४४ में आपका लेख 'जन्मनगरी कुण्डलपुर', तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा प्रकाशित 'भ. महावीर जन्मभूमि प्रकरण' नामक आलेख, डॉ. सुदीप जैन का आलेख "क्या वर्द्धमान महावीर की जन्मभूमि वैशाली नहीं है?" आर्यिका चन्दनामती जी, ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन के आलेख में एवं 'सन्मतिवाणी' इंदौर के अप्रैल-मई अंक के सम्पादकीय का भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया। इन सभी आलेखों की सामग्री से यह ध्वनित होता है कि भ. महावीर के जन्म स्थल को कुण्डलपुर मानने में किसी को आपत्ति नहीं है। आपत्ति आगम ग्रंथों में प्रयुक्त 'विदेह-कुण्डपुर' शब्द के कारण हुई है। इससे यह ध्वनित होता है कि भ. महावीर का जन्म स्थल विदेह क्षेत्र स्थित कुण्डलपुर है। विदेह कहां है, इसका निर्णय भूगोल, इतिहास एवं जैन-जैनेतर साहित्य के संदर्भ में किया जाना चाहिए न कि मात्र व्यक्तिनिष्ठ धारणाओं के आधार पर जिनका कोई त्रैकालिक मूल्य नहीं होता। जैसा कि शोधादर्श के प्रधान सम्पादक जी का सुझाव है, आगम, इतिहास, भूगोल, पुरातत्वीय साक्ष्यों आदि के आधार पर जैन-जैनेतर विद्वानों की एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में इस विषय पर विशद चर्चा कराकर मतैक्य स्थापित किया जाना चाहिए। हम अपने विचार एवं आस्था के केन्द्रों को पक्षपातविहीन बनावें, यही भावना है। इसी में सर्वहित है।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलई

◆ **शोधादर्श**-४६ वास्तव में भगवान महावीर से संबंधित विभिन्न जानकारियों से परिपूर्ण एवं अवसर के अनुकूल है। पू. सुधर्मा स्वामी रचित 'महावीरत्थुई' का श्रीचन्द सुराणा द्वारा प्रस्तुत अनुवाद सरल एवं सरस है। डॉ. ऋषभचंद फौजदार ने शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा वैशाली के वासुकुंड (कुंडग्राम) को भगवान महावीर का जन्म स्थान प्रामाणिक सिद्ध किया। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का "Impact of Ahimsa on Human Affairs" पढ़कर सुखद अनुभूति हुई। "The Archaeology of Faith-Lord Rishabhdeo" में श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा प्रो. आर. एस. शर्मा के कथन का खंडन किया जाना उचित ही है।

श्री जमनालाल जैन, डॉ. शशिकान्त तथा श्री कैलाश भूषण जिन्दल के लेख जहां पठनीय ओर विचारणीय हैं, वहीं ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्के विषयक रमाकान्त जैन का आलेख ज्ञानवर्धक है। श्रीमती सुधा जिन्दल का नाटक 'अर्जुनमाली' और डॉ. महावीर प्रसाद 'प्रशान्त' की तीर्थंकर महावीर विषयक रचना प्रशंसनीय हैं। 'समाधान मांगते प्रश्न' के अन्तर्गत यदि विभिन्न शंकाओं के समाधान का प्रयास किया गया है तो 'साहित्य सत्कार' के अन्तर्गत सार्थक समीक्षा द्वारा पुस्तकों की विषय वस्तु की अच्छी जानकारी दी गई है। समग्रतः यह अंक संग्रहणीय है।

- रोहित कुमार जैन, लखनऊ

◆ **शोधादर्श**-४६ पढ़ा, आनन्द आया। 'भ. महावीर का जन्म स्थान', 'जैन धर्म', 'जैन धर्म का मूल तत्व अहिंसा' आलेख खोजपूर्ण हैं। पुरातात्विक विश्वास-भगवान ऋषभदेव, अयोध्या का अस्तित्व विषयक साक्ष्य शोध मुमुक्षुओं के लिये बड़े उपादेय हैं। 'अर्जुन माली' नाटक बहुत ही शिक्षाप्रद है। प्रकृत पत्रिका में और अन्य विधाएं-समाधान मांगते प्रश्न, समाचार विविधा, समाचार विमर्श, साहित्य सत्कार, अभिनन्दन आदि शीर्षकों से विविध सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों की जानकारी बड़ी महत्वपूर्ण है जो पत्रिका की गरिमा भी है।

- डॉ. धर्मचंद्र जैन, कुरुक्षेत्र

◆ **शोधादर्श**-४६ में यथानाम तथा गुण के आधार पर आद्योपान्त सामग्री पठनीय है।

- पं. पवन कुमार जैन शास्त्री 'दीवान', मुरैना

◆ **शोधादर्श** का मैं बड़ी बेसब्री से इंतजार करता हूँ। यह नवीन तथ्यों की जानकारी देता है, मौलिकता पोषी है और उत्तरोत्तर उन्नमता की ओर अग्रसर है। **शोधादर्श**-४६ में सम्पादकीय समयानुकूल है। रमाकान्त जी की क्षणिकाएं सत्य का दर्पण दिखाने में सफल हैं।

भगवान महावीर का जन्म स्थान कहां है, इस पर विद्वानों, इतिहासविदों, मुनिराजों आदि में वाक् और लेख (कलम) युद्ध छिड़ा है। इस सम्बन्ध में इस अंक में अच्छी सामग्री पढ़ने को मिली।

'शुद्धाम्नायः स्वरूप और उत्पत्ति' और 'अर्जुनमाली' पूरा पढ़ा। समाधान मांगते प्रश्नों के उत्तर भी रुचिकर लगे। सुमेरु पर्वत, क्षीरसागर, स्वर्ग, नरक आदि कल्पना भी है और वास्तविकता भी। जैसा कि प्रत्येक अंक में 'समाचार विमर्श' के अन्तर्गत समाज की विसंगतियों, त्रुटियों पर प्रहार सुधार की दृष्टि से किया जाता है वह इस अंक में भी पाया। तृतीय विद्वत् परिषद का गठन होना चिंतनीय विचारणीय ज्वलंत प्रश्न है। मुनि को राजकीय अतिथि का दर्जा दिया जाना निश्चित ही सोचने पर मजबूर करता है।

- पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवां (सागर)

◆ **शोधादर्श** पूरा परिवार नियमित रूप से पढ़ रहा है। सभी सामग्री ज्ञानवर्द्धक है।

- सनत कुमार जैन, रायपुर

◆ **शोधादर्श** को यथा नाम बनाए रखें। इसमें नाटक, कहानियां और निम्नस्तरीय कविताओं का प्रकाशन इसकी छवि को धूमिल करता है। दर्जनों प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं की तुलना में **शोधादर्श** विशिष्ट है और इसकी विशिष्टता अक्षुण्ण रहनी चाहिए।

- कैलाश चंद जैन, कोलकाता

◆ **शोधादर्श**-४६ में सुधर्मा स्वामी द्वारा महावीर का गुणगान अच्छा है। नवीन स्फूर्ति मिलती है। डॉ. ज्योति प्रसाद और डॉ. सांवलिया द्वारा 'अहिंसा' पर लिखे आलेख खोजपूर्ण और सारगर्भित हैं। महावीर के जन्मस्थान विषयक आलेख विचारणीय-मननीय है। 'शुद्धाम्नायः स्वरूप और उत्पत्ति' एक नवीन विषय को सुन्दर ढंग से सामने रखता है। अर्जुनमाली के बारे में प्रस्तुत नाटक से सर्वप्रथम जानने का

अवसर मिला। महावीर सम्बन्धी अन्य जानकारी, समाचार विमर्श और साहित्य सत्कार भी ज्ञानवर्धक है। सभी दृष्टि से अंक सुन्दर बन पड़ा है।

- मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

◆ आपका सम्पादकीय अहिंसा शिखर सम्मेलन के नाम से पढ़कर बहुत निराशा हुई। हमने भगवान महावीर का दीक्षा कल्याणक दिल्ली में मनाया और सभी सम्प्रदायों के राष्ट्रसंत (मुनिजन) उसमें पधारे। इससे जैन एकता को बल मिला और सभी सम्प्रदायों के जैन बन्धुओं ने इसमें भाग लिया। आपका यह लिखना कि क्या इस सबसे दीक्षा कल्याणक मनाना सार्थक हो गया, उचित नहीं है। आप बतायें कि आपकी पत्रिका से समाज को क्या लाभ हो रहा है?

आपने मुनियों की भी आलोचना कर डाली है। मुनियों की आलोचना करने का अधिकार आचार्यों को है क्योंकि वही जानते हैं कि क्या सही है और क्या गलत है? क्या एक दसवीं पास व्यक्ति किसी पोस्ट ग्रेजुयेट व्यक्ति के बारे में टिप्पणी कर सकता है? नहीं कर सकता। मैं आपका आभारी हूँगा कि यदि आप इस प्रकार के लेखों को लिखना बंद करेंगे।

- वीर राजेन्द्र कुमार जैन, लखनऊ

◆ **शोधादर्श**-४६ अंक अत्युत्तम है ही साथ में सम्पादकीय में श्री अजित प्रसाद जी द्वारा व्यक्त की हुई अपेक्षायें-कि दीक्षा कल्याणक पर आयोजित अहिंसा शिखर सम्मेलन में जैन धर्म के विभिन्न पंथों के साधुओं द्वारा आत्मालोचन अवश्य होना चाहिये था तथा निर्दोष चर्यारत साधुगणों के निर्देशों पर श्रमणाचार में आई विकृतियों पर कड़े प्रहार किये होते तो भारी सार्थकता इस शिखर सम्मेलन की होती-अत्यन्त समयोचित है। उपगूहन के नाम पर हम शिथिलाचार को क्यों सहते जा रहे हैं?

श्रमण और ब्राह्मण विचारधारा का भेद पुरुषार्थाश्रित और दैवाश्रित रूप में क्रमशः डॉ. शशिकान्त ने बहुत स्पष्ट रूप से उजागर किया। भ. महावीर की सहजता में ही उनकी महानता है। अंतरंग से ही महावीर की पहचान शक्य है, बाह्य घटनाओं से नहीं, श्री जमनालाल जैन का यह विवेचन अतिशय सार्थक व उपयोगी है। डॉ. आर. टी. सांवलिया के अहिंसा तत्व के विवेचन में स्वहिंसा का भेद छूट गया है।

- मनोहर मारवडकर, नागपुर

◆ **शोधादर्श**-४६ के सम्पादकीय 'अहिंसा शिखर सम्मेलन-दीक्षा कल्याणक' में ठीक ही लिखा है कि भौतिक उपलब्धियां और कठोर साधना दो विपरीत दिशायें हैं, इस कारण साधक को संग्रह से बचना चाहिये। आपकी यह टिप्पणी सभी धर्मों के मठाधीशों और उपदेशकों के लिये समान रूप से लागू होती है।

सुधा जिन्दल का 'अर्जुनमाली' नाटक तथा श्री रमाकान्त जैन का 'पंडित-कवि आशाधर' लेख पढ़कर प्रसन्नता हुई। **शोधादर्श** मेरे लिये एक आदर्श पत्रिका है जिसका मुझे इन्तज़ार रहता है।

- विष्णु शर्मा विश्वात्मा, लखनऊ

◆ I continue to read Shodhadarsh with keen interest and learn something new from each issue. It seems that we think alike on many subjects, but I am ignorant while you are erudite and I gain some knowledge from Shodhadarsh every time I go through it. I have shown it to a few friends, who want to subscribe to it.

- Shanti Prakash Jain, Meerut

◆ I got your address from Shravanbelagola Jain Mutt. I was bery much pleased to see SHODHADARSH containing much information, plentiful of news concerning Jainism. I would like to become its subscriber.

- Sreekanta, Bangalore

◆ हमेशा की तरह **शोधादर्श** अंक ४६ अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक सामग्री से परिपूर्ण है। श्री रमाकान्त जैन की क्षणिकाएं समायानुकूल हैं। रात-दिन हम सब इस तरह के दृश्य देखते हैं।

- राजदुलारी जैन, कानपुर

◆ **शोधादर्श**-४६ में अत्यन्त शोधपरक लेख विद्वानों के हैं। ये लेख ज्ञानवर्धन के साथ-साथ विचारों और आचार को सुलझाने में सहायक हैं।

- प्रेम कुमार जैन, विदिशा

◆ **शोधादर्श**-४६ में श्री सुधर्मास्वामी का भगवान महावीर का स्तवन अत्यन्त भावप्रवण है। अनुवादक ने मूल की रक्षा करते हुए कथा को अद्भुत चारुता प्रदान की है। पण्डित-कवि आशाधर से सम्बंधित जानकारी अत्यंत रोचक तथा ज्ञानवर्धक है। डॉ. ऋषभचंद्र जैन ने विभिन्न शास्त्रीय उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध करने का सार्थक प्रयत्न किया है कि महावीर स्वामी का जन्मस्थान विदेह का कुण्डपुर है, मगध देश

का कुण्डलपुर नहीं। डॉ. सांवलिया और श्री जिन्दल के लेख जैनधर्म के स्वरूप को उद्घाटित करते हैं। सुधा जिन्दल का नाटक 'अर्जुन माली', मेरी दृष्टि में, इस अंक का प्रमुख आकर्षण है।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर

◆ **शोधादर्श-**४६ में भगवान महावीर पर ज्ञानवर्द्धक व सुन्दर लेख पढ़ने को मिले। डॉ. राजेन्द्र कुमार बन्सल का - 'शुद्धाम्नायः स्वरूप और उत्पत्ति' भी पढ़ा। ऐसे लेख की मैं बहुत दिनों से तलाश में था।

- जयप्रकाश जैन, मेरठ

◆ **शोधादर्श** महावीर जयंती अंक २००२ चारों ओर फैली निराशा के बीच आशादीप है। बदलाव-समाधान आपके प्रयासों में छिपा है। कुछ नहीं तो मुट्ठी भर प्रयास तो हम कर ही सकते हैं। समाज के कुएं में तो भांग घुल गई है-सर्वत्र अर्थ अनर्थ कर रहा है।

- डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

◆ **शोधादर्श** के सभी अंक संग्रहणीय होते हैं। अंक -४६ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्के शीर्षक से रमाकान्त जैन की टिप्पणी देखी। अंक ४५ में छपी सूचना पर ई. इं. कम्पनी के १८३६ के सिक्के के सम्बन्ध में प्रो. जीवन्धर कुमार को पत्र लिखा तो उन्होंने स्वीकार किया है कि सिक्के के फेक (जाली) होने की संभावना अधिक है। इसी प्रकार ई. इ. कम्पनी के १६१६ के भ. महावीर के सिक्के के बारे में भी स्टेट कलेक्टर की अधिकारिक राय यही है कि वह सही नहीं हो सकता।

- मांगीलाल भूतोड़िया, कोलकाता

◆ 'शोधादर्श' छियालिस पाया। पढ़कर जिसको मन हर्षाया।।
'रमाकान्त' जी की क्षणिकायें। जिनमें छिपी अनेक व्यथायें।।
लेख बने सब ज्ञान पिटारी। भाव-राशि जिनमें है भारी।।
सुंदर ग्रन्थ समीक्षायें हैं। समाधान की इच्छायें हैं।।
'समाचार विमर्श' उपयोगी। सार बनो मत आमिष भोगी।।
मिला ज्ञान सिक्कों का अच्छा। बार-बार पढ़ने की इच्छा।।
है पठनीय अंक यह भाई। सम्पादक जी, कोटि बधाई।।

- दयानंद जड़िया 'अबोध', लखनऊ

◆ **शोधादर्श**-४६ के सम्पादकीय में श्रमणाचार में आई विकृतियों की ओर जो ध्यान आकृष्ट किया है, वह निश्चित रूप से अनुमोदनीय एवं अभिनंदनीय है। पूरे अंक में बिन्दु में सिन्धु सी सामग्री संयोजित है जो पठनीय, मननीय, चिन्तनीय एवं संग्रहणीय है।

पढ़कर 'शोधादर्श' को, मिला परम सन्तोष।
गागर में सागर भरा, ज्ञानामृत का कोष।
ज्ञानामृत का कोष, शांति का मार्ग दिखाता।
शाकाहार प्रचार, अहिंसा धर्म सिखाता।।
विश्व-बन्धु सन्देश, 'पारदर्शी' जन पाते।
जिनवाणी का ज्ञान, देश-विदेश पहुँचाते।।

- पारदर्शी, उदयपुर

◆ **शोधादर्श** की सामग्री अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक है। प्राप्त होते ही पहले ही दिन पूरी पढ़ लेता हूँ।

- राजकुमार जैन, जबलपुर

◆ शोध प्रवण गंभीर लेखों से **शोधादर्श**-४६ शोध की कसौटी पर खरा उतरता है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन और डॉ. आर. टी. सावलिया के अहिंसा सम्बंधी आलेख वर्तमान संघर्षपूर्ण मानव जीवन में उसके व्यवहार पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। श्री रमाकान्त जैन के आलेख में पंडित कवि आशाधर की कृतियों के विषय में प्रस्तुत की गई सामग्री जैन विद्या और साहित्य के सुधी शोधकर्ताओं के लिये अत्यन्त मूल्यवान है। डॉ. ऋषभचंद्र जैन 'फौजदार' ने अनेक शास्त्रीय साक्ष्यों आदि के आधार पर महावीर का जन्म स्थान विदेह (वैशाली के समीप कुण्डलपुर) होने के विषय में तार्किक विवेचन प्रस्तुत किया है। श्री अजित प्रसाद जैन का आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की ऐतिहासिकता सम्बंधी स्पष्टीकरण प्रो. आर. एस. शर्मा की टिप्पणी के आलोक में सामयिक और समीचीन है। श्री कैलाशभूषण जिन्दल का लेख 'जैन धर्म' सामान्यजन के लिये सामान्य भाषा में प्रस्तुत 'गागर में सागर' जैसा है। डॉ. शशिकान्त का चिन्तन कण- 'श्रमण एवं ब्राह्मण' मनन योग्य है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्कों के विषय में अत्यन्त रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सूचना दी गई हैं

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई/लखनऊ

◆ **शोधादर्श**-४६ प्राप्त होते ही शुरू से आखिर तक पढ़ डाला। आपने संपादकीय लेख में ठीक ही लिखा है कि मोक्ष मार्ग के साधक तो सर्व परिग्रह का त्याग कर आत्मसाधना करते हैं, आज प्रायः सभी मुनि वेश में ही भोगों की सामग्री जुटाने में लगे हैं। परिग्रह रहित हों तो अन्तर्मुखी हों। परिग्रह में लिप्त होकर ध्यान क्या खाक करेंगे? कविवर पं. आशाधर जी की बाबत लेख सप्रमाण संग्रहणीय है। डॉ. फौजदार ने प्रमाणों का खूब संकलन किया है, कड़ी मेहनत की है। भाई जमनालाल ने भी गजब का लिखा है। - **- महावीर प्रसाद जैन सर्राफ**

शाकाहार प्रचारक, नई दिल्ली

◆ **शोधादर्श** में सम्पादकीय, गुरुगुण कीर्तन, समाचार विमर्श, साहित्य सत्कार आदि सभी स्तम्भ अनूठे हैं। मुद्रण, विषयवस्तु आर्कषण बिन्दु हैं। शोध जगत की श्रेष्ठ पत्रिका है **शोधादर्श**। **- श्रीमती ऋचा- अनिमेष जैन, सागर**

◆ **शोधादर्श**- ४६ पूर्ण गरिमा तथा भव्यता लिये है। सभी लेख प्रभावी, तथ्यपरक एवं सार्थक हैं। **- श्रीमती विमला मोतीलाल 'विजय', कटनी**

शेष पृष्ठ ४८ का.....

राजगृह नरेश महेन्द्रसिंह और उसकी रानी कूर्मा के पुत्र धर्मदेव के कई भव की इस कथा को पौराणिक कथा के समान प्रामाणिकता प्रदान करने हेतु कृतिकार ने उसे इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा पर वर्धमान महावीर स्वामी के मुखारविन्द से कहलाया है। दान, तप, शील (आचरण) और भाव रूप चतुर्विध धर्म में भी भाव को महान महावीर स्वामी के श्रीमुख से कहलाया है और दया भाव को सबसे उत्तम। शनैः शनैः भावों की निर्मलता के फलस्वरूप कूर्मापुत्र द्वारा गृहस्थ होते हुए केवलज्ञान प्राप्ति करने की कई भवों की इस कथा को कवि की कल्पना ने यत्र-तत्र रंग भर रोचकता, चारुता और मौलिकता प्रदान की है।

विश्वविद्यालयी परीक्षा के लिये अध्ययनरत अपने छात्रों के उपयोगार्थ इस कृति की विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में संग्रहित, १५३९ ई. से १९१६ ई. के मध्य की गई १० हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन, परीक्षण, शोधन-सम्पादन कर उसे अंग्रेजी अनुवाद, टिप्पण तथा अपनी विवेचनात्मक प्रस्तावना के साथ १९३३ में प्रकाशित कराने का श्रेय वासुदेव-उमा पुत्र गुजरात कालेज, अहमदाबाद में संस्कृत और अर्ध-मागधी के प्रोफेसर काशीनाथ वासुदेव अभयंकर को है। तुलनात्मक अध्ययन हेतु शुभवर्धनगणि का मूल कथानक भी परिशिष्ट में समाहित है।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

छपते–छपते

अनभ्र वज्रपात !

२१ अगस्त की प्रातः वेला **शोधादर्श** के वयोवृद्ध प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन के जीवन में दुर्दिन बनकर आई जब काल के क्रूर हाथों ने अकस्मात उनके ज्येष्ठ पुत्र **सूर्यकान्त** को उनसे छीन लिया। अभी दो वर्ष पूर्व २१ जुलाई, २००० ई. को उनका छोटा पुत्र मणिकान्त भी काल का ग्रास बन चला गया था। अपने दोनों ही पुत्रों के असमय निधन से व्यथित वृद्ध पिता की मनोवेदना का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

१७ मई, १९४२ ई. को गणेशगंज, लखनऊ में श्रीमती धनवती जैन की कोख से जन्मे सूर्यकान्त ३१ मई, २००० ई. को उत्तर प्रदेश जल निगम में प्रोजेक्ट इंजीनियर के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। वह अपने पीछे अपनी पत्नी श्रीमती किरण जैन, पुत्र चि. दीपक तथा दो पुत्रियां श्रीमती हनी और कु. मोना को छोड़ गये हैं।

सूर्यकान्त को विविध प्रकार का साहित्य पढ़ने का शौक रहा, ज्योतिष में उनकी विशेष अभिरुचि रही। सेवानिवृत्ति के उपरान्त औषधीय पौधों का अध्ययन करने, उन्हें अपने घर में लगाने तथा उनसे आम रोगों का प्राकृतिक उपचार बताने में उनका रुझान रहा। यूं तो वह स्वयं कई व्याधियों से ग्रस्त रहे और उनका उपचार स्वयं अपने तरीके से करते रहे। ऐसी कोई बात एक दिन पूर्व तक नहीं थी जिससे लगता कि वह हम लोगों से इतनी जल्दी मुँह मोड़ जायेंगे। रात्रि में लगभग ४ बजे कफ़ ने परेशान किया और प्रातः ६.१५ के लगभग दिल का दौरा पड़ा जो जानलेवा हो गया।

शोधादर्श परिवार दिवंगत के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति की तथा शोक संतप्त पिता एवं अन्य सभी स्वजनों को यह अनभ्र वज्रपात धैर्यपूर्वक सहने की शक्ति प्राप्त होने की प्रार्थना करता है और अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

❑ १६ जून को इन्दौर में ६६ वर्षीय संस्कृत वाङ्मय और पुरातत्त्वविद डॉ. हरिहर त्रिवेदी का निधन हो गया।

– रमाकान्त जैन

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोघादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑ ❑ ❑